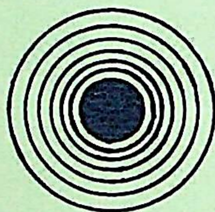
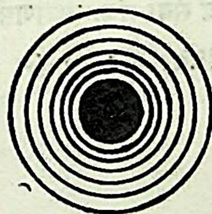
लोकनीति : दादा की नज़र से



विमला

लोकनीति : दादा की नज़र से



विमला



शिवकुटी, आबू पर्वत, ३०७५०१

प्रथम संस्करण–१९५८ सर्व सेवा संघ, वाराणसी
वर्तमान नवीन संस्करण–१९९१ वि० प्र० ट्र०

देय–.१०/–

मुद्रक :—
वर्द्धमान मुद्रणालय,
जवाहरनगर, वाराणसी

दो शब्द

सितम्बर १९५८ में दादा के बम्बई में तीन प्रवचन हुए थे। उनका सारांश पुस्तिका-रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। विद्यार्थी, नवयुवक एवं बुद्धिनिष्ठ लोगों के लिए यह पुस्तिका उपयुक्त साबित होगी, ऐसी आशा है।

२७ सितम्बर १९५९ — संचयिका
राजघाट, काशी — विमला



निवेदन

ये जो भाषण हैं, यह मैं आप लोगों के सामने अध्ययन के रूप में रख रहा हूँ। मैं लोकनीति का अध्ययन कर रहा हूँ। कुछ नतीजों पर पहुँचा हूँ। पर सारे नतीजे आखिरी नहीं हैं। अध्ययन के दौरान में—जैसे-जैसे मेरा अध्ययन बढ़ता है, कुछ नतीजे बदलते हैं, नये नतीजों पर भी पहुँचता हूँ। एक सहाध्यायी के नाते आज आप लोगों के सामने मैं आया हूँ।

दादा धर्माधिकारी

नव-संस्करण

श्र० विमलाजी द्वारा संचयित, सङ्कलित, लिखित जो वाङ्मय—अखिल भारतीय सर्वसेवासंघ (वाराणसी) द्वारा १९५६ से १९६४ तक प्रकाशित हुआ था—

वह प्रायः पन्द्रह वर्ष से सर्वथा अप्राप्य हो गया था, विशेषकर 'भूदानयज्ञ' में प्रकाशित लेख एवं संस्मरणादि। अपने भारत की वर्तमान प्रौढ़-युवा-किशोर पीढ़ियों के लिये वह सदा-तारुण्य-सञ्चारी जीवन-दिशा-दर्शक एवं मन-बुद्धि में शुभसंस्कारसिञ्चन करने वाला वाङ्मय पुनः उपलब्ध कराने की प्रेरणा अन्तर्यामी प्रभु ने इस हृदय में दी। सर्वसेवासंघ के वर्तमान प्रकाशन-विभाग ने बड़े औदार्य एवं सौजन्य से वे दुष्प्राप्य पुस्तिकायें ('भूदानदीपिका', दादा की नजर से लोकनीति') तथा 'भूदानयज्ञ'-पत्रिका की १९५५-६४ तक की पुरानी पंजिकायें (Files) यथासम्भव उपयोग के लिये उपलब्ध करा देने की कृपा की। इनमें से अपेक्षित सामग्री लेकर विमलवाङ्मय के एक साथ ये चार प्रकाशन हो पाये हैं—

(१) भूदानदीपिका, साथ ही—भूदानसम्बन्धी अन्य लेख, यात्रा-संस्मरण तथा दादा धर्माधिकारी का 'नख-दर्पण'

(२) पञ्चामृत—विविध संकलन एवं लेख

(३) साम्ययोग—साम्यवाद तथा साम्ययोग-विषयक लेखों का संकलन

(४) लोकनीति दादा की नजर से—इस पुस्तिका में श्र० दादा के १९५८ के तीन व्याख्यानों के अतिरिक्त १९५५ में 'भूदानयज्ञ' में प्रकाशित एक लेख भी समाविष्ट कर दिया गया है।

दुष्प्राप्य सामग्री उपलब्ध कराने के सौजन्य के लिए सर्वसेवा-संघ—(राजघाट, वाराणसी) के प्रकाशनविभाग के प्रति अवशेष आभार व्यक्त होना स्वाभाविक है।

इन चारों प्रकाशनों में—संकलन-सम्पादन-प्रूफसंशोधन-प्रस्तुतीकरण इत्यादि में हुई सभी त्रुटियों के लिए सविनय क्षमाप्रार्थी—

मकरसंक्रान्ति
१९९१

श्र० "दीदी" की ही एक
सन्तान

त्याग व प्रेम के पथ पर चल कर मूल न कोई हारा।
हिम्मत से पतवार सँभालो फिर क्या दूर किनारा॥ १॥

है जो नहीं अनुकूल हवा तो परवा उसकी मत कर।
मौजों से टकराता बढ़ चल, उठ माँझी! साहस कर।
कुण्ड पड़े या आँधी आये उमड़ बढ़े जल धारा।
हिम्मत से पतवार सम्भालो फिर क्या दूर किनारा॥ २॥

दरियाओं की छाती पर था तूने होश सँभाला।
लहरों की थपकी से सोया तूफ़ानों ने पाला।
जी भर खेला खेल भँवर में बचपन मस्त गुजारा।
हिम्मत से पतवार सँभालो फिर क्या दूर किनारा॥ ३॥

हाथ लगा विश्वास को पकड़े खोल खिवैया लंगर।
मदद मलाहों की करता आया है मस्त कलन्दर।
जान हथेली पर रखकर लाखों को तूने तारा।
हिम्मत से पतवार सम्भालो फिर क्या दूर किनारा॥ ४॥

[भूदान-आन्दोलन में सतत साथ रहे कविश्री—] 'दुखायल'

अनुक्रम

शीर्षक पृष्ठ संख्या

१. लोकनीति का अर्थ १–१८

राजनीति और लोकनीति, लोक की व्याख्या अन्तर्राष्ट्रीय नीति और लोकनीति, विश्व-नागरिक, विश्व-मानव, ओछे कपड़े, तीसरा पैमाना, लोकनीति, राजनीति क्यों चाहिए ?

ट्रॉट्स्की और क्रान्ति की बुनियाद, एंगेल्स और लेनिन, विवाद की जड़, लोकजीवन की मर्यादा-पालन ही लोकनीति, क्रान्ति की मर्यादाएँ, शरीर की अनाक्रमणीयता, विवेक का नियन्त्रण।

२. लोकनीति का आधार १९–४३

सत्ता के तीन उपयोग, 'लोक' शब्द के संस्कृत में अर्थ, मूल्य इहलोक के या परलोक के ? लोकनीति इहलोक के लिए, क्रान्तिकारियों के सपने, संयोजन और व्यक्ति की स्वतन्त्रता, लोकनीति का आधार बुद्धिशक्ति, 'एथिडियन्स' और 'मिडियन्स' का झगड़ा, आज की राजनीति, स्टेटमेनशिप्, डिप्लोमेसी कर्मस्वातन्त्र्य और समाजपरिवर्तन, लोकनीति की तजवीज, जिम्मेवार नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्ध, माओ की बात, लोकनीति और विचार-स्वतन्त्रता, सम्प्रदायवाद का निरीक्षण, नागरिक की राज से माँगें, आगे की माँग, गरीबी चुराने कोई नहीं आता, पासदार और पहरेदार।

३. आत्म-निवेदन ४४–७१

अराज्यवाद और शासनमुक्ति, लोकनीति सत्ता विरोधी नहीं होती, प्लेटो की बात, हम चाहते क्या हैं ? 'शीघ्र से शीघ्र' की अवधि, नागरिकों के बीच में कानून

न हो, सत्ता को बाँटना है, औजारों के बारे में विवेक, सत्तावादियों की नास्तिकता, सत्ता के दुष्परिणाम, ईसा का तादात्म्यवाद।

४. राजनीति से लोकनीति की ओर ७२-८०

जातिभेद दिल से हटाने होंगे, सुझावों की दृष्टि, वशिष्ठ सत्ता, सत्ता सम्पत्ति से ऊपर उठना, गुणात्मक लोकशाही चाहिए।
आज की परिस्थिति, सम्मिलित कार्य की शर्त, हमारा नागरिक कैसा होगा ? लोकनीति और राजनैतिक पक्ष, लोकनीति और चुनाव; लोकनीति और लोकशिक्षण लोकनीति और लोक-आन्दोलन, लोकनीति और अधिकृत हिंसा, संसदीय और वैधानिक संस्थायें, उपसंहार।

यह रास्ता शहीद होने का है

सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलने वाले को समझ लेना चाहिये कि यह रास्ता शहीद होने का रास्ता है। सत्य और अहिंसा के रास्ते पर जो कोई 'इफ़ेक्टिव'—परिणामकारक काम करेगा वह एक न एक दिन मारा जायेगा। सत्य और अहिंसा का रास्ता दुनिया सह नहीं सकती।""शायद मारे जाने पर ही व्यक्ति की देवशक्ति सफल होगी।

—विनोबा

आवाहन

जब देश पर अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने के लिये तत्पर इन्सान होंगे, ऐसे इन्सान जिनके रोम-रोम में ईमानदारी हो—जब ऐसे लोग उठ खड़े होंगे तो भारत हर दृष्टि से महान् होगा। तभी भारत जागेगा जब हजारों विशाल-हृदय युवक और युवतियाँ जीवन की विलासिताओं को त्याग कर अपना सब-कुछ उन लाखों करोड़ों देशवासियों के लिए न्योछावर कर देंगे जो बेसहारा हैं तथा धीरे-धीरे अभावों और अज्ञान की खाई में गिरते जा रहे हैं।

ऐसे नौजवानों को इकट्ठा कीजिए जो अपना हृदय और आत्मा, भारत की कोटि-कोटि जनता को उभारने में लगा सकें। उन्हें जगाइये, उन्हें एक-साथ जमा कीजिये, उनमें आत्म-त्याग की प्रेरणा भरिये क्योंकि उन्हीं नौजवानों पर भारत का सब कुछ निर्भर करता है। —स्वामी विवेकानन्द

मैंने कभी नहीं कहा कि जबतक शोषण और शोषण करने की इच्छा बनी हुई है, तब तक शोषकों और शोषितों में सहयोग होना चाहिये। इतनी ही बात है कि मैं यह नहीं मानता कि तमाम पूँजी-पति और जमींदार जन्मजात आवश्यकता के कारण शोषक ही हैं या उनके और जनसाधारण के हितों में कोई बुनियादी या अमिट विरोध है। शोषण मात्र का आधार शोषितों का सहयोग है, भले ही वह खुशी से दिया गया हो या मजबूरी से। हमें यह स्वीकार करना कितना ही बुरा लगता हो, परन्तु यह सत्य है कि यदि लोग शोषकों की आज्ञा का पालन करने से इन्कार कर दें तो शोषण नहीं होगा। —महात्मा गाँधी

लोकनीति का अर्थ : १ :

लोकनीति में 'लोक' और 'नीति' दो शब्द हैं। इसका अनुवाद करना मुश्किल है। वॉल्टर लिपमन ने एक अर्थ बताया है—'दि पीपुल्स फिलॉसफी' अर्थात् 'लोक-दर्शन'। लोगों का आचरण, लोक-व्यवहार और लोगों के परस्पर सम्बन्ध—क्या इनके लिये कोई ऐसे नियम हैं, जिनका उल्लंघन स्वयं लोक भी नहीं कर सकता ?

मैंने 'लोक' शब्द को 'लोक' ही रखा, 'लोग' नहीं कहा। क्योंकि संस्कृत भाषा का 'लोक' शब्द हमने लोकनीति में लिया है। 'दि पीपुल' शब्द का अनुवाद 'लोक' शब्द से कर रहा हूँ। क्या ऐसे लोक-जीवन के कोई नियम है, ऐसे कोई मूल्य हैं ? अगर हैं, तो उनकी खोज होनी चाहिये। अगर खोज करने के बाद कुछ नियम पाये जाते हैं, तो उनकी स्थापना होनी चाहिये। स्थापना के बाद उनका संरक्षण भी होना चाहिए।

राजनीति और लोकनीति

राजनीति और लोकनीति में अन्तर है। राजनीति वह नीति है, जिसके अनुसार राजाओं को और राज्यकर्ताओं को अपने व्यवहार और आचरण का नियमन करना चाहिये। लोकनीति वह नीति है, जिसके अनुसार हर मनुष्य को समाज में अपने जीवन का नियमन करना चाहिये, नियन्त्रण करना चाहिये। मैं 'अपना नियन्त्रण' कर रहा हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि लोगों का नियन्त्रण किसी दूसरी सत्ता को करना चाहिए। दूसरी सत्ता जब लोगों का नियन्त्रण करती है, तब वह सत्ता लोगों के लिये होती है, लेकिन लोकसत्ता नहीं होती। लोग जब अपना नियन्त्रण आप

करते हैं, याने हर मनुष्य अपना नियन्त्रण करता है, तब एक मनुष्य अपने व्यवहार में दूसरे मनुष्य के साथ अपना नियन्त्रण करता है। दोनों मिलकर आपस के सम्बन्धों का नियन्त्रण करते हैं। और दो मनुष्य एक-दूसरे के साथ अपने सम्बन्ध का नियन्त्रण समाजहित की दृष्टि से करते हैं।

ये तीन बातें लोकनीति में आती हैं :

१. मेरा अपना आचरण।

२. मेरा अपने साथी के साथ आचरण।

३. मेरे साथी और मेरा मिलकर
समाज के लिये संयुक्त आचरण।

'लोक' की व्याख्या

मराठी में लोक का अर्थ है—'दूसरा'। माँ को अगर किसी लड़के से कहना हो कि भोजन के वक्त माँगना नहीं चाहिये, तो वह कहती है—"लोकांचे घर आहे" याने यह दूसरों का घर है, यहाँ माँगना नहीं चाहिये। इसका एक अर्थ मराठी भाषा में किसी तरह यह हो गया कि जो गैर है, वह 'लोक' है। दूसरा एक अर्थ, जो आजकल राजनीति में है, वह यह है कि जो मतदाता है, वह 'लोक' है।

लोकमत का जब आप उल्लेख करते हैं—कश्मीर में लोकमत ले लीजिये, हैदराबाद में लोकमत ले लीजिये, बम्बई में लोकमत ले लीजिये—तो लोकमत से मतलब है, उस वक्त जितने मतदाता जीवित हों।

क्या ये 'पीपुल' हैं ? क्या इन्हें 'लोक' कहना चाहिए ? आज के जितने राज्यशास्त्री हैं और इनमें मैं लोकसत्तावादियों से लेकर प्रॉलेतारियत की तानाशाहीवादी—मजदूरों के अधिसत्तावादी जो लोग हैं—सबको शामिल करता हूँ। सबका कहना है कि आज का

युग 'लोक-युग' है। इस युग की विभूति 'लोक' हैं। आखिर ये 'लोक' कौन हैं? क्या ये हमेशा एक ही रहते हैं? आपकी मत-गणना जिस वक्त हो रही हो, उस वक्त भी ऐसा होता है कि इन लोगों में से कुछ मरते हैं और कुछ उसी वक्त पैदा होते हैं। ये लोक में हैं या नहीं?

अन्तर्राष्ट्रीय नीति और लोकनीति

राज्यशास्त्र में 'रिप्रेजेण्टेटिव गवर्नमेण्ट' में, प्रातिनिधिक राज्यसत्ता में 'लोक' का अर्थ है सिर्फ मतदाता, जिसको मतदान का अधिकार है, जो नागरिक है। यहाँ से विचार का आरम्भ होता है और सोचने में फर्क पड़ जाता है।

तीन शब्द आपके सामने सोचने के लिये रखता हूँ। सोचने में कैसा फर्क होता है, यह दिखाने के लिए—

१. 'इण्टरनेशनल सिटिजनशिप'

२. 'वर्ल्ड सिटिजनशिप'

३. 'मैन-ह्युमैनिटी'

"इण्टरनेशनल सिटिजनशिप' क्या है? मैं सारे राष्ट्रों का सदस्य हूँ। मनुष्य को दो या अनेक राष्ट्रों की नागरिकता प्राप्त हो सकती है। सभी राष्ट्रों की नागरिकता प्राप्त होना लोकनीति नहीं है। यह अन्तर्राष्ट्रीय नीति है। अन्तर्राष्ट्रीय नीति अलग है, लोक-नीति अलग है। दुनिया में जितने क्रान्तिकारी हुए, वे अन्तर्राष्ट्रीय नीति की ओर से लोकनीति की तरफ जाना चाहते हैं।

थर्ड इण्टरनेशनल में, जो मास्को में १९१९ में हु थी, यह कहा गया था कि हम नेशनल बाउण्डरीज नहीं चाहते। क्यों नहीं चाहते? इसलिये कि सारी दुनिया के श्रमिकों को एक करना है— **Working men of all countries unite.** सारे देशों के काम करने वाले श्रमिक अगर एक हो जाते हैं, तो देशों की, राष्ट्रों की और

राज्यों की सीमाएँ नहीं रह सकतीं। यह इण्टरनेशनलिज्म है। लेकिन जब राष्ट्रों की सीमाएँ ही नहीं रहेंगी, तब अन्तर्राष्ट्रीयता भी नहीं रहेगी। अन्तर्राष्ट्रीयता तभी तक है, जब तक राष्ट्रों की सीमाएं हैं। यह लोकनीति नहीं है। इसलिये दूसरा शब्द आया—विश्व-नागरिक।

विश्व-नागरिक

अब यह 'विश्व' शब्द हिन्दी में चल पड़ा है। ज्यों का त्यों मैं ले रहा हूँ। विश्व में तो चाँद, सितारे, सूरज सभी आ जाते हैं। अब वहाँ भी नागरिकता स्थापित करने की कोशिश अलग-अलग हो रही है। इसलिये मैंने उसको छोड़ दिया है।

हमारा यह जो भूलोक है, यह जो पृथ्वी, जिसको हम जगत् कहते हैं, उसमें एक नागरिकता होगी।

एक खब्ती-सा आदमी घर से निकल पड़ा—उसका नाम है गेरी डेव्हिड। बहुत अप्रसिद्ध आदमी हैं। उसको कोई जानता नहीं। अखबार में एकाध दफ़ा छोटी-सी खबर निकल जाती है। निकल पड़ा अपने घर से और कहा कि मैं एक देश से दूसरे देश में जाऊंगा। पासपोर्ट नहीं लूंगा। हर जगह रोका जाता था। गिरफ्तार होता था। छूटता था। फिर शुरू कर देता था चलना। दूसरे देश में गिरफ्तार होता था। ऐसा होते-होते १९५७ की २३ नवम्बर को वह पेरिस में गिरफ्तार हुआ। वह भी तंग आ गया और पकड़नेवाले भी तंग आ गये। आखिर अमेरिका—उसके घर—पहुँचा दिया गया। कहा कि तेरी विश्व-नागरिकता जितनी हुई, उतनी काफी है। अब इससे अधिक के लिये इस वक्त गुंजाइश नहीं!

उसने तीन बातें हर सार्वजनिक सभा में लोगों से पूछीं :

१. क्या आप यह चाहते हैं कि दुनिया के सभी लोगों के

सार्वमत से दुनिया के मुख्य-मुख्य प्रश्न हल किये जायँ ? जितनी दुनिया की मुख्य समस्याएँ हैं, उनके लिये दुनिया के सभी लोगों की राय ली जाय। दुनियाभर का प्लेबिसाइट हो—मुख्य-मुख्य समस्याएँ हल करने के लिए।

२. अगर यह नहीं, तो क्या आप यह मानते हैं कि जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ हैं, उनमें राज्यों के प्रतिनिधि न हों, लोगों के प्रतिनिधि हों ?

३. तीसरी बात—जो राष्ट्रसंघ या अन्तर्राष्ट्रीय संस्था होगी, उसमें सभी देशों के प्रतिनिधि हों। कोई देश ऐसा न हो, जो छूट जाय।

उस आदमी का दिमाग बहुत गलत नहीं था जो बात कह रहा था, वह कुछ सही बात कह रहा था; लेकिन जमाने से कुछ पहले कह रहा था। इसलिये उस जमाने का वह महमूद तुग़लक साबित हुआ।

विश्व-मानव

अब एक तीसरी बात गान्धी और विनोबा के मुंह से निकली 'विश्व-मा-व'। 'वर्ल्ड सिटिजन' की बात वे नहीं कह रहे हैं। वे कहते हैं कि दुनिया के नाप का इन्सान होना चाहिये। विज्ञान ने दुनिया के शरीर को एक कर दिया। क्या दुनिया की आत्मा एक हो सकती है ? अगर दुनिया की आत्मा एक करनी है, तो अब जो मनुष्य होगा, वह दुनिया के नाप का होना चाहिए।

हर जमाने के नाप का एक-एक मनुष्य हुआ, जिसको मैंने उस जमाने की 'युग-विभूति' कहा है—'गवर्निंग पर्सनलिटी' कहा है। मध्ययुग में वह था 'स्पिरिच्युअल मैन'। यानी अध्यात्मवादी मनुष्य नहीं, परलोकवादी मनुष्य—देववादी मनुष्य उस जमाने की विभूति थी।

उसके बाद 'एज ऑफ इनलाइटमेण्ट' में जो आदमी आया, उसे बुद्धिवादी मनुष्य कहा गया।

उसके बाद 'विक्टोरियन पीरियड' में 'इकनॉमिक मैन' आया यानी सम्पत्तिवादी—अर्थवादी।

उसके बाद समाजवाद के युग में प्रोलेतारियन—श्रमिक—आया। आज अणुयुग में लोक के आकार के मनुष्य की आवश्यकता है। वह रहता कहीं भी हो—चाहे छोटे गाँव में रहता हो—लेकिन दुनिया के नाप का हो। आज लोग यू० एन० ओ० में बैठकर अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में बात करते हैं। लेकिन रहते हैं अपने-अपने घर में। भाषा अन्तर्राष्ट्रीय है, लेकिन भावना तो राष्ट्रीय भी नहीं है—काफी हद तक संकीर्ण है। दुनिया का शरीर एक हो गया है, तो क्या दुनिया का मन और उसकी आत्मा एक हो सकती है? यह लोकनीति का मुख्य सवाल है। इसके लिये नागरिकता काफी नहीं है।

ओछे कपड़े

दो शब्द हैं, जो अब लोकनीति के लिये काफी नहीं हैं। लोकनीति की कल्पना में इतनी प्रगति हो गयी है कि अब इन दोनों शब्दों के कपड़े उसको ओछे होने लगे हैं। वे दो शब्द हैं : सदस्यता और नागरिकता।

सदस्यता से 'इंस्टिट्युशनैलिज्म' आ जाता है। संस्थावाद और कभी-कभी सम्प्रदायवाद भी आता है। और अब तो आता है—पक्षवाद।

पक्षों के बारे में इंग्लैंड में विचार हुआ—जहाँ से पक्षों का जन्म हुआ। पुराने जमाने के लॉर्ड हेलिफाक्स ने इंग्लैंड की राजनीति नाम की किताब में कुछ विचार व्यक्त किये हैं। उसने एक बहुत सख्त, लेकिन पते की बात कही—Party is a sort of

conspiracy against the rest of the people. यह क्यों ? तो वह अपने दायरे से अछूतों की तरह दूसरों को बाहर रखती है। घी के नीचे जैसा तलछट बन जाता है, उस तलछट को कढ़ाई के बाहर फेंक देते हैं, ऐसे यह अपने संरक्षण से दूसरों को बाहर कर देती है। जैसे 'ज्यूज' और 'जेनटाइल्स' में फर्क होता था, सम्प्रदाय में वैष्णव-शेव इस तरह का फर्क होता है। उसी तरह का कुछ फर्क संस्थाओं के कारण आ जाता है। जयप्रकाश नारायण 'साथी' कब तक ? कम्युनिस्ट पार्टी में या तो पी० एस० पी० में हैं, तब तक ! और पी० एस० पी० में नहीं और कम्युनिस्ट पार्टी में भी नहीं हैं तो ? तो फिर 'भूतपूर्व' साथी जयप्रकाश नारायण। भूतपूर्व क्यों हो गये ? अब वह साथी नहीं रहे ? कल तक पी० एस० पी० में थे, आज नहीं रहे। कहना यह चाहिये कि कल तक कुछ कम साथी थे, अब पूरे साथी हो गये—यह क्यों नहीं कहा जाता ? इंस्टिट्युशनैलिज्म आ जाता है। सदस्यता आ जाती हैं। सदस्यता और मानवता में कॉनफ्लिक्ट पैदा हो जाता है। विरोध पैदा हो जाता है। जब तक दानों एक-दूसरे को बढ़ाती है, याने सदस्यता जब तक मानवता को बढ़ाती है, पोषण देता है, तब तक संस्था उपकारक होती है।

मैं संस्था के खिलाफ नहीं बोल रहा हूँ। संस्थावाद के खिलाफ, इंस्टिट्युशनैलिज्म के खिलाफ बोल रहा हूँ। जब संस्था बड़ी हो जाती है, मानवता से जब संस्था को हम अधिक महत्त्व देने लगते हैं, तब संस्था को तरफ से मानवता की तरफ कदम बढ़ाना जरूरी हो जाता है। संस्था मानवता को मर्यादित ही नहीं, सीमित, परिमित कर देती है। जब वह उसको परिमित कर देती है, तब संस्थावाद से पार होना पड़ता है।

दूसरी है, नागरिकता। दो शहरों का झगड़ा है। क्या झगड़ा

है ? हाईकोर्ट किस शहर में रहे ? एक शहर में इसके लिए सभा हुई। वहाँ दोनों शहर के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए। एक-दूसरे के यहाँ भोजन करने जाते हैं। जिस शहर में सभा हो रही है, वहाँ की स्वागत-समिति सबको भोजन कराती है। भोजन के समय धन्यवाद देने के लिए दूसरे शहर का आदमी खड़ा हो जाता है। कहता है कि आप लोगों ने बड़े प्रेम से भोजन कराया। आपके आतिथ्य के लिए धन्यवाद। यजमान जवाब देता है—साहब, आपने यह क्या कहा ? यह हमारा कहाँ से, सब आप ही का है। लेकिन सभा में जब बैठते हैं, तो कहते हैं कि हम अपने के अधिकार का संरक्षण करेंगे। उस पर आपका जरा भी आक्रमण हम सह नहीं सकते। उनसे पूछा कि आप यहाँ तो कह रहे थे कि वह सब आपका ही है। जवाब दिया गया कि वह हमारी प्राइवेट केपेसिटी थी। यह हमारी पब्लिक केपेसिटी है। दूसरी अपनी सार्वजनिक हैसियत है। हैसियतों में मुकाबला खड़ा हो गया। नागरिकता के लिए जो नीति होती है, वह हमेशा व्यक्तिगत जीवन के लिए नहीं होती। नागरिकता के और व्यक्तिगत जीवन के सदाचार के दो अलग-अलग पैमाने होते हैं। जब तक अलग-अलग हैं, तब तक कोई झगड़ा नहीं। लेकिग जहाँ इन दो पैमानों में विरोध हो जाता है, वहाँ तीसरा पैमाना कौन-सा हो ?

तीसरा पैमाना : लोकनीति

तीसरा पैमाना है 'लोकनीति'। लोकनीति किसे कहते हैं ?

लोगों ने यह माना है कि गांधीजी तो राजनीति में हिस्सा लेते थे, लेकिन विनोबा राजनीति में हिस्सा नहीं लेते। विनोबा ने अपने ढंग से जवाब दे दिया। उन्होंने कहा कि अगर जयप्रकाश बाबू को आप राजनीति में हिस्सा लेनेवाले मानते हैं, तो मैं तो उनसे ज्यादा हिस्सा लेनेवाला हूँ। उनकी अगर एक राजनीति है,

तो मेरी भी एक राजनीति है। वह है राजनीति की तरफ से लोकनीति की तरफ जाने की राजनीति। मैं राजनीति से संन्यास लेकर नहीं बैठा हूँ। उसको मोड़ना चाहता हूँ। लोगों की तरफ उसको मुखातिब करना चाहता हूँ। अब लोगों की तरफ मोड़ने का क्या मतलब है? तीन तरह से इसका जवाब दिया जा सकता है।

राजनीति क्यों चाहिए ?

१. एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर आक्रमण न करे।
२. हरएक के लिये सुख की सामग्री प्रस्तुत हो सके।
३. आज के समाज को बदला जा सके। समाज को बदलने का साधन भी सत्ता होगी।

ट्रॉटस्की और क्रान्ति की बुनियाद

ट्रॉटस्की ने 'डेमोक्रेसी एण्ड डिक्टेटरशिप' नाम की अपनी किताब में लिखा है कि क्रान्तिकारी के खिलाफ जो सेनाएँ भेजी जायँ, उनकी इच्छा-शक्ति को तोड़ना पड़ता है। To break the will of the army thrown against him. इच्छाशक्ति शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। ट्रॉटस्की शस्त्र-शक्ति को तोड़ने की बात नहीं कह रहा है। यह आपके ध्यान में तब आयेगा, जब आप इस तरफ ध्यान देंगे कि गैरिबॉल्डी की सेना में जितने सैनिक थे, उससे कई गुना सैनिक राजा की सेना में थे। मॉओ के पास जितने सैनिक थे. उससे कई ज्यादा सैनिक च्यांग के पास थे। ट्रॉटस्की कहता है :

In this way the revolutionist will be able to solve thc problem of power which is the basic problem of revolution. सत्ता की समस्या क्रान्ति की बुनियादी समस्या है। क्रान्तिकारी ने एक सूत्र बतलाया कि सत्ता के मार्फत हम समाज-परिवर्तन करना चाहते हैं। अब यह समाज-परिवर्तन कैसे होगा ?

और किसलिए ? हम दो क्रान्तिकारियों के जवाब पेश करेंगे। वे दो क्रान्तिकारी गांधी और विनोबा नहीं होंगे। उनके क्रान्तिकारी होने में कुछ लोगों को सन्देह है। क्रान्तिकारी विशेषण के लिये ये पात्र हैं कि नहीं, यह प्रश्न विवाद्य है। इसलिए मैं दूसरे दो क्रान्तिकारी लूंगा।

एक एंगेल्स और दूसरा लेनिन।

एंगेल्स और लेनिन

एंगेल्स लिखता है : Thus the state withers away. इस तरह राज्य अपने-आप विलीन होता चला जाता है। लेनिन ने 'स्टेट एण्ड रिवोल्यूशन' में इसको कुछ साफ ढंग से रखा है—The state disappears and democracy itself begins to wither away. वह कहता है कि राज्यसत्ता का विलीनीकरण तो होता ही है, लेकिन लोकसत्ता भी धीरे-धीरे विलीन होती चली जाती है। फिर बाद में क्या होता है ?

The people become accustomed to follow those fundamental rules of public and social life, which have been preached for centuries in a thousand sermons.

लोकोपदेशकों ने सामाजिक जीवन के जिन नियमों का प्रतिपादन सदियों तक किया है, उन नियमों का पालन लोग अपने-आप करते हैं। उनको आदत हो जाती है। ट्रॉटस्की की बात हमने मान ली। यह स्टॉलिन के बाद का ट्रॉटस्की नहीं है। क्रान्तिकारी ट्रॉटस्की कहता है कि क्रान्ति की मुख्य समस्या सत्ता की समस्या है। मान लिया। ज्यों की त्यों मान लिया। क्रान्ति को जाना किस तरफ है ? राज्यसत्ता तो रहेगी नहीं, और लोकसत्ता भी नहीं रहेगी। उस तरफ को कदम बढ़ाना है, पर दिशा कौन-सी है ?

विवाद की जड़

आज यूगोस्लाविया में और रूस में जो विवाद हो रहा है, वह असल में यह है कि एक कहता है—राज्यसत्ता को विलीनीकरण की तरफ कदम बढ़ाना चाहिए। दूसरा कहता है कि राज्यसत्ता जब तक पूरी हाथ में नहीं होगी, तब तक विलीनीकरण कैसे करेंगे ? यह समझने की बात है। सिर्फ हमको देखने में विरोध मालूम होता है, लेकिन आप अध्ययन करेंगे और समझने की कोशिश करेंगे, तो बात बेतुकी मालूम नहीं होगी ! आखिर वह इतना ही कहता है कि आप क्या चाहते हैं ? राज्य न रहे, इसकी कोशिश किसको करनी है ? मुझको करनी है न ? तो उसके पूरे अधिकार मुझे दो, फिर कोशिश करूँगा। अब आप देखिये—यह तर्कदुष्ट बात नहीं है ?

लोगों ने मान लिया यह क्या है ? यह कम्युनिस्ट परस्पर-विरोधी बातें करता है। मैं तो उसको साबित दिमाग का आदमी मानता हूँ।

वेलफेअरिज्म और डिक्टेटरशिप कहना यह चाहता है कि राज्य अगर नहीं चाहिए आपको, यदि आप उस मुकाम पर पहुँचना चाहते हों, जहाँ व्यवस्था के लिए भी राज्य की जरूरत नहीं रहेगी, तो उस मुकाम पर आपको पहुँचाने के लिए सारे हक मेरे सुपुर्द कर दीजिये। यह प्रॉलेतारियत डिक्टेटरशिप नहीं है, पहले पार्टी डिक्टेटरशिप होती है रिवोल्यूशनरी पार्टी की। जब इसको जरा वेलफेअरिज्म के साथ रखोगे, तो दोनों के चेहरों में साम्य दिखायी देता है। फेमिली रिजेम्बलन्स नहीं, जुड़वाँ भाई का साम्य।

पार्लमेंट में विरोधी पक्ष ने कहा था कि यह राज्य तो हमारे जीवन में जहाँ-तहाँ प्रवेश करने लगा, तो मैंने जवाब दिया कि आप राज्य से जितनी अधिक अपेक्षाएं रखेंगे, उतना उसका प्रवेश

अधिक होगा। तो वेलफेअरिज्म और डिक्टेटरशिप दोनों का परिणाम अन्त में स्टेटिज्म में होता है, राज्यवाद में होता है।

लोग हमसे पूछते हैं कि क्या कभी राज्य रहेगा ही नहीं? क्या आज ही से राज्य समाप्त हो जायगा? आज से नहीं होगा, तो फिर राज्य की कुछ तो मात्रा रहेगी ही?

हम कहते हैं जरूरत रहेगी। कितनी रहेगी? स्वतन्त्रता की व्यवस्था के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी रहेगी। जीवन के लिये जितनी आवश्यक होगी, उतनी ही जहर की मात्रा ली जायगी। वैसे ही सत्ता का जितना उपयोग स्वातन्त्र्य के लिये आवश्यक हो, उतना ही करना होगा। Socialism and Communism does not consist in converting a whole people into a nation of employees. इसको समझना होगा। लोकनीति की बात मैं क्यों कर रहा हूँ? इसलिये कि राज्यवाद की ओर से—चाहे वह वेलफेअरिज्म हो या डिक्टेटरशिप हो—लोगों की स्वतन्त्रता की तरफ हमको कदम बढ़ाना है। लोगों में जिम्मेवारी की भावनाएँ बढ़ानी हैं। जिम्मेवारी की भावनाएँ कब बढ़ेंगी? जब लोक-जीवन की मर्यादाओं का पालन समाज में प्रत्येक व्यक्ति करेगा।

लोकजीवन की मर्यादाओं के पालन का नाम ही लोकनीति है।

रिप्रेजेण्टेटिव डेमॉक्रेसी—प्रातिनिधिक लोकसत्ता—अलग वस्तु है और लोकनीति अलग वस्तु है। प्रतिनिधिक लोकसत्ता जब तक लोकनीति के अनुरूप होती है, लोकनीति के अनुसार चलती है, तब तक वह यथार्थ लोकसत्ता होती है। नहीं तो वह फार्मल डेमॉक्रेसी, केवल वैधानिक लोकसत्ता हो जाती है। कान्स्टीट्युशनलिज्म और चार्टर्ड लिबर्टी। कागज पर जो आपको अधिकार दिया गया है, वह अगर वास्तविक न हो, तो कागज जल भी सकता है

और उड़ भी सकता है। चार्टर्ड लिबर्टी, कान्स्टीट्यूशनल लिबर्टी के पीछे कुछ वास्तविकता होनी चाहिये; नहीं तो समाज-परिवर्तन में सत्ता का प्रयोग कम होता है। एक से पूछा गया कि रूस में जब तक जॉर का राज्य था, तब तक समाज-परिवर्तन का क्या साधन हो सकता था ? तो उसने सूत्र में जवाब दिया। थोड़े में उसने बात कह दी—**What is Russia today ? It is despotism tempered by assasination.** वहाँ की निरंकुश सत्ता का वर्णन किया है, लोगों की तरफ से और प्रजा की तरफ से भी। राजा भी क्या चाहता है और लोग भी क्या चाहते हैं ? 'डेम दी ग्रेसेस, ब्लेस दी रिलेक्सेस्।' नियन्त्रण पर लानत, दुहाई निरंकुशता की। अपनी मर्जी से सब कुछ कर सके, यह राजा भी चाहता है। तो इस सर्व-सत्ताधारी निरंकुश राजा की सत्ता में परिवर्तन करने का कौन-सा रास्ता था ? एक ही रास्ता था—कत्ल। इंग्लैंड में क्या है ? वहाँ—**Our's is parliamentary absolutism tempered by revolution.** हमारी पार्लमेंट की अधिसत्ता है और इसको अगर बदलना हो, तो क्रान्ति के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

क्रान्ति की मर्यादाएँ

आज की लोकसत्ता की मूल समस्याएँ ये हैं : यह जो क्रान्ति होगी; क्या इसके लिये भी कोई नियम होगा ? क्या इस क्रान्ति की भी कोई मर्यादा होगी, जिस मर्यादा का उल्लंघन क्रान्तिकारी भी नहीं कर सकेगा ? जिन मर्यादाओं का पालन क्रान्तिकारी को भी करना पड़ेगा, उसे हम 'लोकनीति' कहते हैं। इनका उल्लंघन क्रान्तिकारी भी नहीं कर सकेगा। पहले मैं देववादी राज्यशास्त्रियों की मर्यादाएँ गिना देता हूँ। इसके बाद फिर लोकवादी सेक्युलर लोगों की मर्यादाएँ गिना दूँगा। ये जो देववादी थे, उन्हें आप परलोकवादी मान लीजिये। मैंने उनको जान-बूझकर अध्यात्मवादी

नहीं कहा। इनका प्रमुख प्रवक्ता था सेंट आगस्टाइन। इसने 'दि सिटी ऑफ गॉड' में एक बात लिखी कि सत्य राजा होगा— Truth shall be your king. Love your law and Eternity your measure.

सनातन काल, कालतत्त्व। 'एटर्निटी' क्यों कहा? 'प्रेजेंट' हमेशा 'फ्लोटिंग' होता है। 'फ्यूचर' अभी आया नहीं। 'पास्ट' निकल गया। और 'प्रेजेंट' तो प्रतिक्षण जाता है। तो हमारे सामने कौन-सा क्षण है? जो क्षण सामने है, वही एटर्निटी है। इमर्सन का एक बड़ा सुन्दर वाक्य है—All history is contemporary history. जितना इतिहास है, वह वर्तमान इतिहास है। क्यों? The hours instruct the ages and the ages instruct the hours. हरएक क्षण में युगों का संस्कार है और हर युग में हमारे क्षण का प्रभाव है। जिस क्षण में हम जीते हैं, उस क्षण का प्रभाव हर युग पर है। यही 'एटर्निटी' वह कहता है। Eternity shall be your measure. तुम यह नहीं कहोगे कि यह आज के लिए है, कल के लिए नहीं है। तुम यह कहोगे कि हमारे जो सिद्धान्त हैं, वे हर जमाने के लिए हैं। जहाँ-जहाँ मनुष्य होगा, उन-उन स्थानों के लिए हैं, जब-जब मनुष्य होगा, उन-उन युगों के लिए हैं। उसने तो Truth कह दिया। अब सिर्फ उसके Truth कहने से ही हमारा काम नहीं होता। कौन-से पैमाने हैं, जो हम लेना चाहते हैं। आज के राज्य-शास्त्रियों ने तीन पैमाने रखे हैं। और मैं आपसे कह दूँ कि यह राज्यशास्त्री, यह लेखक किसी भी सम्प्रदाय का हो, लेकिन दुनिया में जितने राज्य-शास्त्री हैं, क्रान्तिकारी राज्यशास्त्री भी या समाजवादी साम्यवादी, सबको इन तीन पैमानों को मानना है। कौन-से तीन पैमाने हैं?

शरीर की अनाक्रमणीयता

पहला पैमाना है: 'दि इण्डिविजुअलिटी ऑफ ह्यमन पर्सन'

समाज में मनुष्य का शरीर अनाक्रमणीय होगा, अवध्य होगा। आपने इसको अपराध-चिकित्सा, क्रिमिनालॉजी तक मान लिया। दुनिया में आज सब लोग कहते हैं कि अब फाँसी की सजा नहीं होनी चाहिए। पर चाहते सब यही हैं कि जो हमारे मत का न हो, उसको फाँसी न हो, यह जोड़ दिया जाय। उसको फाँसी न हो, जिसने मेरे बेटे को मार दिया, उसको भी फाँसी न हो, जिसने मेरे पिता को मार दिया या भाई को मार दिया। उसके लिये सबकी राय एक है, सबके हाथ उठ जायेंगे। परन्तु क्या उसको भी फाँसी न हो, जो मेरी राय से अलग राय रखता है? तो अहिंसावादियों के भी हाथ नहीं उठते, आज। उनमें भी इतनी हिम्मत नहीं आयी है कि वे यह कह दें कि हाँ, उसको फाँसी नहीं होनी चाहिए। कहेंगे—नहीं, यह समाज-कंटक है। इसके विडिंग आउट की आवश्यकता है।

Let a hundred flowers bloom. सौ-सौ गुल खिलने दीजिये, लेकिन कौन-से? जो हमारी क्यारी में खिलते हैं, वे गुल हैं, जो दूसरी क्यारी में खिलते हैं, वे काँटे हैं! इसके लिए मर्यादा क्या चाहिए? पुराने ईसाइयों के केननाइजेशन के वक्त होते थे। एक आदमी को संत की उपाधि देनी हो, यह कहना हो कि अमुक मनुष्य सन्त कहलाने के लिए योग्य है या नहीं, हम उसको सन्त की उपाधि देना चाहते हैं, इसका केननाइजेशन होगा। किसीको एतराज हैं? किसी को आपत्ति है? कोई खड़ा नहीं होता। फिर भी वे कहते हैं कि थोड़ी देर राह देख लो। राह किसकी? **Wait for the devil's advocate.** शैतान का वकील कहीं किसी कोने में छिपा हुआ होगा। अपनी बात कहने का उसको भी मौका मिलना चाहिए। यह दूसरा सिद्धान्त है! **Truth shall prevail over error.** न्याय सत्य हमेशा प्रमाद से श्रेयस्कर माना जायगा।

सत्ता सत्य की होगी। सत्यमेव जयते। फिर सत्य का फैसला कौन करेगा? आप करेंगे या मैं करूँगा? नहीं। आप और मैं दोनों मिलकर करेंगे। इसके लिए अनाग्रह चाहिए। Wait for the devil's advocate. शैतान के वकील को भी जो कुछ कहना है, कहने दो। फिर उसकी दलील को आप काटेंगे और आपकी दलील को वह काटेगा? No! we shall argue cooperatively. सुकरात और प्लेटो दोनों ने कहा कि हम विवाद तो करेंगे, दलील भी करेंगे, लेकिन कैसो? सहयोगात्मक विवाद। 'मिटे वाद तेथें संवाद करवा' समर्थ रामदास का वाक्य है! जहाँ वाद नहीं रहता, वाद को समाप्त करने के लिए सम्वाद करना है। सुकरात ने कहा कि हम 'डायलेक्टिक्स' को नहीं मानते, 'हारमनी' को मानते हैं। हम विवाद को मानते ही नहीं, हमारी पद्धति सम्वाद की पद्धति है। सम्वाद की पद्धति में जो आपसे भिन्न विचार रखता है, उसको अपने भिन्न विचार रखने की आजादी होनी चाहिए। आपको मूर्ख कहने की भी आजादी होनी चाहिए। देहली में लोकशाही के विषय में जो सेमिनार हुआ, उसमें कृपलानीजी आये थे। उसने पूछा कि आप क्या चाहते हैं? उन्होंने कहा—खाना, कपड़ा, मकान तो सभी चाहते हैं, उतना तो मैं चाहता ही हूँ। लेकिन इसके सिवा एक चीज और चाहता हूँ। वह यह कि पार्लमेण्ट में खड़ा होकर प्रधानमंत्री को मूर्ख कह सकूं। अब वह उनका ढंग है कहने का। लेकिन बात तो उन्होंने बहुत पते की कही। यह जड़ की बात है। उन्होंने कहा, 'ऐसा जो देश होगा कि जिस देश में मुझे खाना, पीना, कपड़ा तो खूब मिले, लेकिन जिस देश की पार्लमेण्ट में खड़ा होकर प्रधानमंत्री के सामने या उनके पीठ के पीछे मैं उनको अगर मूर्ख न कह सकूं, तो मुझे मनुष्य का अधिकार प्राप्त नहीं है।' बरट्रैण्ड रसेल ने एक वाक्य में उसका बड़ा सुन्दर उल्लेख

किया है : The happiness of the pig is impossible in the man. मनुष्य के लिए सूअर का सुख नहीं होता। मिल ने कहा था : It is better to be a man dissatisfied than to be a pig satisfied.

तृप्त सूअर होने से अतृप्त मानव होना बेहतर है, श्रेयस्कर है। तो मनुष्य की आवश्यकता में यह दूसरी आवश्यकता बहुत बड़ी आवश्यकता है कि वह अपने भिन्न विचार को व्यक्त कर सके। अब 'मूर्ख कह सकें' से मेरा मतलब यह तो नहीं है कि कोई किसी को गाली दे। 'मूर्ख कह सकें' से मतलब यह कि वह आपको गलत बतला सके। आपको मूर्ख कहना गाली होगी, यह चीज अलग है। उसका आपको मतलब हो लेना है।

विवेक का नियन्त्रण

तीसरी चीज लोकनीति की मर्यादा में यह है कि मेरी इच्छा पर मेरे विवेक का नियन्त्रण होना चाहिए। Reason should control Will राजा की मर्जी हो, तानाशाह की मर्जी हो या सारे पार्लमेंट को यूनानिमस मर्जी हो तब भी वह प्रमाण नहीं है, अगर उसमें विवेक नहीं है। अमेरिका की सारी पार्लमेण्ट मिलकर—पार्लमेण्ट कह रहा हूँ—जो कुछ नाम वहाँ हो, कल अगर यूनानिमस फैसला कर दे कि किसी नीग्रो या काले आदमी को अमेरिका की शिक्षण-संस्था में जाने का अधिकार नहीं है, तो वह कान्स्टीट्यूशनल राय होगी, लेकिन लोकनीति के अनुसार वह प्रमाद होगा और गलत राय होगी। वह अत्याचार होगा और अन्याय होगा। इसलिए मैंने आपसे कहा कि किसी लेजिस्लेटिव इन्स्टीट्यूशन—कानून बनानेवाली संस्था की इच्छा पर भी विवेक का नियन्त्रण होना चाहिए। विवेक का पैमाना लोकनीति होगी। सार्वजनिक जीवन के नियमों के खिलाफ कानून बनाने का अधिकार किसी देश की पार्लमेण्ट को यूनानिमस वोट से, एक मत से भी नहीं होना

चाहिए। अब 'आर्गनायजिंग फॉर पावर एण्ड आर्गनायलिंग फॉर म्युच्यूअल लिबर्टी' में कैसा अन्तर है, और उससे मनुष्य के रुख में किस तरह का अन्तर पड़ जाता है, यह देखेंगे। आर्गनायजिंग फॉर म्युचूअल लिबर्टी यानी एक दूसरी स्वतन्त्रता के लिए अगर हम कदम बढ़ायें, तो लोकसत्ता की परिणति जिम्मेदारी के लोक-राज्य में हो जाती है, और जिम्मेदारी का लोकराज्य धीरे-धीरे शासन-मुक्ति की ओर कदम बढ़ाता है। लोकनीति इसमें कितनी सहायक होती है यह कल आपलोगों के सामने रखने की चेष्टा करूँगा।

१-९-'५८

लोकनीति का आधार : २ :

सत्ता के तीन उपयोग

१. सत्ता समाज-व्यवस्था का साधन है। समाज-व्यवस्था से मतलब है, व्यक्ति की स्वच्छन्दता का नियन्त्रण।

२. सत्ता समाज-कल्याण का साधन है।

३. जिस पर मैंने खास तौर से जोर दिया था, सत्ता समाज-परिवर्तन की क्रान्ति का भी साधन है। तो एक मनुष्यों के सम्बन्धों का नियन्त्रण, जिसे आप 'एडमिनिस्ट्रेशन' कहते हैं, प्रशासन कहते हैं, दूसरा 'सोशल वेलफेअर', तीसरा 'इन्स्ट्रूमेण्ट ऑफ सोशल ट्रान्सफार्मेशन', जिसे आप रिवोल्यूशन (क्रान्ति) कहते हैं। तीनों दृष्टियों से मैंने सत्ता का विचार आपके सामने रखने का उपक्रम किया था।

'लोक' शब्द के संस्कृत में अर्थ

'लोक' शब्द के संस्कृत में दो अर्थ हैं। एक अर्थ है, एक विशिष्ट जगत्, जिसे आप वर्ल्ड कहते हैं। इहलोक परलोक। दूसरा उस विशिष्ट लोक में जो रहनेवाले मानव हैं, जो उसके निवासी हैं, उन्हें भी लोक ही कहते हैं, और तीसरी बात कल मैंने विश्वमानव के रूप में सुझायी थी कि लोकनीति का सम्बन्ध लोकात्मा से है। मैंने कहा यह था कि सारी दुनिया का शरीर एक हो गया है। क्या दुनिया में एकात्मता भी आ सकती है? बाहरी नहीं, भीतरी एकता। भीतरी एकता का नाम एकात्मा होना ही है। और इसीको असली एकता कहते हैं, जिसमें विविधता भी होती है। 'पॉली-मार्फिज्म।' आजकल के विचारकों ने एक नया शब्द

गढ़ा है। पॉली-मार्फिज्म ही लिबर्टी है। स्वतन्त्रता में विविधता, विविधरूपता होनी चाहिए। एकरूपता नहीं होगी, विविधरूपता होगी और विविधरूपता से एकता होगी। इस तरह के समाज की तरफ हमको कदम बढ़ाना है।

मूल्य इहलोक के या परलोक के ?

कुछ लोगों को शायद यह खयाल हो कि ये सारी मर्यादाएँ जो मैं कह रहा हूँ, ये वे ही मर्यादायें तो नहीं हैं, जो पहले जमाने के धार्मिक लोग बतलाया करते थे। मैं पौराणिक, जीर्ण मतवादियों की दकियानूसी, पारलौकिक मर्यादाओं का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। लोक-जीवन के जिन मूल्यों को हम आज के समाज में स्थापित करना चाहते हैं, क्या वे पारलौकिक मूल्य हैं? स्वर्ग के मूल्य हैं? अगर स्वर्ग के मूल्य हैं, तो आपका स्वर्ग आपको मुबारक हो।

You started with bringing heaven to the earth and you have only succeeded in converting the earth into hell.

यह तुमने किया है। स्वर्ग को जमीन पर लाना चाहते थे, पर कोशिशों का नतीजा यह हुआ कि जमीन भी नरक बन गयी। और आक्षेप करनेवाले मामूली मनुष्य नहीं थे। आक्षेप पुराने जमाने के धार्मिक लोगों के विषय में होता था। लेकिन इस जमाने के विज्ञान-वादियों पर भी यह आक्षेप लागू होता है। बुद्धिवादियों के अग्रणी बर्ट्रेण्ड रसेल ने एक बात कही—

Man's imagination pictured hell long ago but it is only modern skill that has enabled him to translate his imagination into actuality. पहले नरक को सिर्फ कल्पना ही थी, लेकिन आधुनिक कुशलता अगर नहीं होती, तो नरक शायद आज, हमको इस जमाने में, जो इस दुनिया में दिखाई देता है, वह दिखाई न देता।

लोकनीति इहलोक के लिए

लोकनीति का सम्बन्ध परलोक से नहीं, इसी दुनिया से है। इहलोक से है। "Your chilly stars I shall forego,
This warm kindly world is all that I know."

लेकिन ऐसी दुनिया को, जो क्षितिज पर दिखाई देती है, जहाँ धरती और आसमान एक-दूसरे को चूमते हुए मालूम होते हैं—Not just the round the corner—हम देखना चाहते हैं। जिस लोकनीति की स्थापना करना चाहते हैं, उसका आरम्भ तो आज से होगा। लेकिन राजनीति जिस जगत् में चरितार्थ होगी, वह क्षितिज पर है, आसमान में नहीं है। 'राउण्ड दि कार्नर' भी नहीं है। रास्ते के मोड़ पर भी नहीं है, आसमान में भी नहीं है, धरती पर है। लेकिन वहाँ पर है, जहाँ धरती आसमान को चूमती है, चूमती हुई नजर आती है। इसे लोगों ने 'युटोपिया' कहा। स्वप्नरंजन, कल्पना का जगत्। और यह उसका परिहास, उपहास करने के लिए कहा। फ्रायड ने कहा था कि जैसी तुम्हारी तबीयत होगी, वैसा तुम सपना देखोगे; जैसा मन होगा, वैसा सपना देखोगे। 'मनी वसे ते स्वप्नी दिसे' महाराष्ट्र की पुरानी नानियाँ और दादियाँ जानती थीं इस इस तत्त्व को। जिन मनुष्यों ने ऐसी दुनिया का सपना देखा होगा, उन मनुष्यों के पागलपन में भी दिव्यता थी। And what have we done? We have developed a madness out of our methods. उलटा किया है। व्यवस्था में से पागलपन बना दिया। उन लोगों के पागलपन में भी एक व्यवस्था थी। What's Utopia? Utopia is the search of community. एक नये समाज की जो खोज है, उसमें से ये सपने आते हैं।

क्रान्तिकारियों के सपने

पुराने जमाने के लोगों ने कुछ सपने देखे, लेकिन उनके सपनों

में और जिन्हें क्रान्तिकारी कहते हैं, समाजवादी-साम्यवादी कहते हैं, जिनका मन्त्रद्रष्टा मार्क्स था, उसने भी एक सपना देखा और ऐसा सपना देखा, जिसने दुनिया के दिल को पकड़ लिया और मानव-समाज के सामने एक चुनौती खड़ी कर दी। बहुतों ने बहुतेरे सपने देखे, लेकिन मार्क्स ने एक वैज्ञानिक सपना देखा और उसमें से दुनिया के सामने एक भावरूप आशाप्रद स्फूर्तिदायक विचार रखा। दुनिया के सामने एक आशा का सन्देश पेश कर दिया। The inevitability of a social order, in which poverty, and suffering shall cease. दुःख और दारिद्र्य जिस समाज-व्यवस्था में नहीं होगा, ऐसी समाज-व्यवस्था अनिवार्य है, वह आने ही वाली है। उसने यह नहीं कहा था कि ऐसी व्यवस्था पहले थी, पर अब नहीं रही। वह यह भी नहीं कहता कि मनुष्य पहले बहुत सुखी था, पर आज दुःखी हो गया है। वह यह कहता है कि ऐसी समाज-रचना आगे आने वाली है, जिसमें न दुःख होगा और न दारिद्र्य। ऐसी समाज-व्यवस्था की कल्पना मार्क्स से पहले किसी ने व्यावहारिक दृष्टि से नहीं की थी। स्वप्न की दृष्टि से जरूरत थी। पुराण, कुरान, आवेस्ता, बायबल सबमें समाज की कल्पना है। एक अच्छे समाज की कल्पना है, एक आदर्श सुसमाज की कल्पना है, लेकिन इस लोक में नहीं, परलोक में। मार्क्स पहला मनुष्य था, जिसने कहा दुःख भी नहीं होगा और दारिद्र्य भी नहीं होगा। उस जमाने के जो नास्तिक लोग थे—नास्तिक से मेरा मतलब ईश्वर को न माननेवाले नहीं; नास्तिक से मेरा मतलब युनिवर्सल स्केप्टीक्स् सार्वत्रिक संशयवादी लोगों से है। उन्होंने कहा कि यह मार्क्स की क्लासलेस सोसाइटी—वर्गविहीन समाज—जिसमें दुःख भी नहीं होगा और दारिद्र्य भी नहीं होगा, बड़ा फीका-फीका-सा होगा। 'कलरलेस् एज् डल एज् दि हेवन ऑफ दि आर्थोडक्स।'

पुराने दकियानूस लोगों की स्वर्ग की जो कल्पना थी, कुछ ऐसा ही उसका होगा। कोई रंग नहीं, कोई रूप नहीं, कोई विविधता नहीं, सबके एक-से पेन्ट, एक-से बुशकोट, एक-से चश्मे और एक-से बाल। इस तरह का कुछ स्टैंडर्डाइज्ड इसका समाज होगा। यह कुछ फीका-फीका-सा मालूम होता हैं। इसमें कुछ ज्यादा आनन्द नहीं रहेगा। लोगों ने तरह-तरह के आक्षेप किये, लेकिन मार्क्स का जिन लोगों ने विरोध किया, दूसरी समाज-व्यवस्था का प्रतिपादन किया, उन लोगों को भी अपने अर्थशास्त्र में मार्क्स के आदर्शों को स्वीकार करना पड़ा। इसलिये उसके विचार में एक पकड़ थी और चुनौती थी। आज दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है, जिसमें यह कहने की हिम्मत हो कि आखिर गरीबी और अमीरी तो रहेंगी ही। रसेल ने कहा कि मेरे सामने एक दिव्य आदर्श है, एक सपना है, एक व्हिजन है। कौन-सा व्हिजन है? **The vision of a society where none will be hungry**—जहाँ कोई भूखा नहीं होगा। **Few will be ill.** बीमार बहुत कम होंगे और होंगे हो, तो **where good will be common.** सद्भाव सामान्य होगा, सार्वत्रिक होगा। **And men released from fear shall create delights for the eye, the ear and the heart.** जहाँ मनुष्य भयमुक्त होगा और भयमुक्त मनुष्य हृदय के लिये, आँख के लिये, कान के लिये, कला के सुन्दर नमूने पेश करेगा, उनका निर्माण करेगा। यह सपना दुनियाभर के लोग आज देख रहे हैं। किसी एक ही का यह सपना नहीं है।

'इलस्ट्रेटेड वीकली' और डांगे

साल-डेढ़ साल पहले की बात होगी। 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में श्री डांगे का एक रेखाचित्र और शब्दचित्र निकला। ऐसे शब्दचित्र सूचक भाषा में होते हैं। इनमें सुझाव होते हैं। ध्वनियाँ होती हैं।

शब्दशः वे सत्य नहीं होते, लेकिन सूचित करते हैं कि जिस मनुष्य का चित्रण हम कर रहे हैं, वह व्यक्ति किस प्रकार का है। दो सवाल किये हैं। उनका जवाब कम्युनिस्ट देता है। एक सवाल पूछा है, जब कम्युनिज्म दुनिया में कायम हो जायगा, तो शोहदों के साथ क्या व्यवहार किया जायगा ? शोहदा या उद्दंड समाज-द्रोही। जो समाज-विरोधी वर्तन करनेवाले हैं, उन लोगों का क्या होगा ? कम्युनिस्ट जवाब देता है, तुम कम्युनिज्म को समझते ही नहीं। जब कम्युनिज्म हो जायगा, तब शोहदा भी होगा ? कोई शरारती भी होगा ? कोई उत्पात करेगा भी ? ऐसा हो ही नहीं तब फिर उसने समझा कि अब तो दूसरा सवाल करूँगा, कम-से-कम उसका जवाब वह इस तरह से नहीं दे सकेगा। उसने पूछा कि ट्राम गाड़ी के नीचे कोई दब जाय, तो उसका बन्दोबस्त आप कैसे करेंगे ? उसने कहा कि हमारी ट्रैफिक की व्यवस्था इतनी परफेक्ट—ठीक होगी कि कोई दुर्घटना ही कभी नहीं होगी। ये कोई पुराने अदर्शवादियों के, युटोपियन्स के जवाब नहीं हैं। दोनों जवाब उसने किताबों में से लेकर दिये हैं। रसेल ने आगे कहा है—Don't say this is impossible. यह मत कहो कि यह असम्भव है। जो असम्भव कहते हैं, उनके लिए सम्भव कुछ भी नहीं हो सकता। उसके जैसा एक 'रॅशनलिस्ट', एक विवेकशील व्यक्ति आज हमसे कहता है कि इस प्रकार का समाज स्थापित हो सकता है।

संयोजन और व्यक्ति की स्वतन्त्रता

समस्या यह है कि इस प्रकार के समाज में मनुष्य की अपनी स्वतन्त्रता का क्या स्थान होगा ? संयोजन अधिकार के लिए होगा, सत्ता के लिए होगा या स्वतन्त्रता के लिए होगा ? स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ भी स्पष्ट कर दूँ। आवश्यक भी है। स्वराज्य का आन्दो-

लन जब शुरू हुआ हमारे देश में, तो लोकमान्य तिलक से लोगों ने यह पूछना शुरू किया कि आखिर आपका स्वराज्य किस प्रकार का होगा ? आप यह जानते हैं कि बुद्धिवादो मनुष्य बड़ा हिकमती होता है। उसके पास बहुत-सी तरकीबें होती हैं। जब वह किसी त्याग या आन्दोलन से बचना चाहता है, तो आलोचना की आड़ लेता है। Criticism is Mr. Everyman's apparatus for escapism वह लोकमान्य से कहने लगा कि आप स्वराज्य को व्याख्या करते नहीं हैं, उसका लक्षण बतलाते नहीं हैं, ऐसे स्वराज्य के लिए कौन तैयार होगा ? उन्होंने कहा कि "मैं आपको स्वराज्य की परिभाषा बतला देता हूँ, अन्तिम परिभाषा—हैवानों को इन्सान बनाने का नाम स्वराज्य है। पशु को मनुष्य में बदलने का नाम स्वराज्य है।" आप यह जानते हैं कि लोकमान्य तिलक इस देश के उन मुट्ठीभर लोगों में से थे, जिनकी शास्त्रीय प्रज्ञा थी। 'गीता रहस्य'-कार थे वे। उनके कहने का मतलब यह था कि जहाँ मनुष्य को कर्म-स्वातन्त्र्य हो, वहीं स्वराज्य है। कर्म-स्वातन्त्र्य से मतलब ? मनुष्य और पशु में आखिर क्या अन्तर है ? अंग्रेजी में नाम है उसका 'होमोसेपियन'। अब 'होमो' से मतलब है मनुष्य ही। इतना कह देना काफी था कि आप सब लोग कौन हैं ? होमो हैं। लेकिन वह 'सेपियन' जोड़ता है। सेपियन से मतलब है, जिसमें अक्ल है, जो समझदार है, बुद्धिमान् है। यह सेपियन का अर्थ है। जो विवेकशील है, वह मनुष्य है। जिसमें बुद्धि है, उसमें मनुष्यता है। यह पशुओं को मनुष्य बनाने की बात मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ। 'एनिमल एपिक' एक पुरानी छोटी-सी किताब हैं। उसकी कहानी मैं कह रहा हूँ। वह उसमें नहीं पायी जायगी, लेकिन उसी तरह की एक कहानी मैं आपसे कह रहा हूँ।

लोकनीति का आधार बुद्धिशक्ति

लोकनीति कहती है कि मनुष्य की जो विशेषता है, वह लोकनीति का आधार हो। लोकनीति का आधार 'कोअर्शन' नहीं, 'कनवर्शन' है। 'सप्रेशन' नहीं, 'पर्सुएसन' है। अगर कोअर्शन है, तो उसका नाम रखा गया 'ब्रूटफोर्स', पशुशक्ति। और विवेकशील विचारकों कहना यह है कि पशुशक्ति कहकर बिचारे पशुओं का अपमान क्यों करते हो ? उसे दानवी शक्ति कहिये, शैतान की शक्ति कहिये, हैवान की शक्ति मत कहिये। लोकनीति का आधार मनुष्य की वह विशेषता होगी, जिसे आप उसकी बुद्धि की शक्ति कहते हैं। सत्ता का जो प्रयोग होगा, वह मनुष्यता के आधार पर होगा। उसके व्यक्तित्व में छिपी पशुता और दानवता के आधार पर नहीं होगा।

'एथिडियन्स' और 'मिडियन्स' का झगड़ा

एथिडियन्स और मिडियन्स का झगड़ा चलता था। दो शहरों का झगड़ा चल रहा था, तो एथिडियन्स ने मिडियन्स से क्या कहा ? It is in our interest to compel you; it is your expediency to submit. और यही हमारा और आपका रिश्ता हो सकता है। हमारे स्वार्थ के लिए यह आवश्यक है कि तुम पर हम हुकूमत करें। तुम अगर अपनी भलाई चाहते हो, तो हमारी बात मानने में ही तुम्हारा कल्याण है। नीट्शे ने, जो यूरोप में 'एण्टी क्राइस्ट' कहलाया, उसने एक सूत्र बतलाया—The only thing that is entitled to be called justice is the will of the strong man. जो बलवान् है, उसकी इच्छा का नाम न्याय है। फिर बल उसका चाहे संख्या में हो, चाहे शरीर में हो। शारीरिक बल और संख्या का बल जिसके पास है, उसकी इच्छा सबको माननी चाहिये। वही न्याय है। All else is slave morality..

गुलामों का सदाचार गुलामों की नीतिमत्ता है। इसके बाद जो कुछ है, उस सबको हमें मानना चाहिये। तो लोगों ने पूछा कि अगर बलवान् की बात सबको माननी चाहिए, तो फिर समाज में अधिकार क्या होगा ? अधिकार किसी का रहे ही नहीं। तो जवाब देता है The question of rights arises only between equals in strength. तुल्यशक्ति जिनमें हो, समान बल हो, उसीके बीच में अधिकार का सवाल पैदा होता है। और नहीं तो ? नहीं तो The strong go on doing what they like and the week go on suffering what they must. जो दुबले हैं, वे सहते चले जाते हैं। जो बलवान् हैं, वे अपनी मर्जी के मुताबिक काम करते चले जाते हैं। यह ऐसी डेमॉक्रेसी, ऐसी लोकसत्ता हो जाती है, जिसमें बलवानों के लिये तो 'सफ्रेज' है और दुर्बलों के लिये 'सफरेन्स' है। सफरेन्स से मतलब है, दूसरों की मेहरबानी पर जीना, दूसरों की मर्जी पर जीना। यह बहुत महत्त्व का प्रश्न है। जिनकी संख्या कम है, शारीरिक शक्ति जिनमें कम है, क्या उन लोगों के लिये भी कोई अधिकार होंगे ? अगर होंगे, तो उन अधिकारों का संरक्षण कौन करेगा ? मिडियन्स ने सवाल पूछा है, इतिहासकार ने जिसका उल्लेख किया है और जो शुरू का पहला इतिहासकार था, उसका नाम है 'थूसिडाइडिस्'। वह कहता है, हमारे अधिकारों का क्या होगा ? वे बलवान् लोग जवाब देते हैं : Of God we believe and of man we know, that by a necessary law of their nature, they exercise power wherever they can. जहाँ-जहाँ वे सत्ता का प्रयोग कर सकते हैं, वहाँ भगवान् भी सत्ता का प्रयोग कर सकता है। देवता भी करते हैं, यह हमारी श्रद्धा है, विश्वास है। मनुष्य तो करता ही है, इसलिये लोकनीति क्या होनी चाहिए ? It is the science of pleasing the most effective majority.

जो सबसे ज्यादा बलवान् लोग समाज में हों, उन लोगों को खुश कर लो, तो लोकनीति हो गयी। सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राजी है। **Lowest denominators of the voters' body, of the citizens' body................**

नागरिकों में जो निम्नस्तर होता है—निम्नस्तर से मेरा मतलब 'अंडर डॉग' नहीं। नागरिकों का जो निम्नस्तर होता है, उसको वह खुश कर लेता है, उस सत्ता को लोकनीति बतलाता है। लोकनीति को अच्छी तरह समझने के लिए मैंने 'पॉवर' की व्याख्या की। लोक के साथ 'सत्ता' शब्द आज लोकनीति में हैं। लोकनीति के साथ तीन शब्द आज व्यवस्था में चलते हैं। लोकराज्य, लोकसत्ता और लोकशाही। तीनों में से मैंने 'सत्ता' शब्द ले लिया है। 'पॉवर' की व्याख्या कुछ विस्तार से इसलिए की कि हमारे मन में एक बहुत बड़ा भ्रम है। और यह भ्रम राज्यशास्त्रियों ने पैदा कर दिया है कि सत्ता के प्रयोग के बिना और सत्ता की प्राप्ति के बिना समाज-परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए यह आवश्यक था कि मैं पहले सत्ता की परिभाषा कर देता। मैं सत्ता को निन्दा नहीं कर रहा हूँ। उसे अपने में बुरा नहीं बतला रहा हूँ।

अपने में बुरा बतलाकर, निन्दा करके दोनों तरह के परिणाम निकल सकते हैं। अंग्रेजी में दो कहावतें चलती हैं—**Give the dog a bad name and then hang it.** कुत्ते को अगर फांसी देनी है, तो पहले गाली दे दो। उसको बदनाम कर दो। लेकिन दूसरा भी नतीजा होता है। **You give a dog a bad name and give him a licence to be bad.** कुत्ते को बुरा नाम देने का अर्थ है उसे बुरा बनने की छूट देना।

लोग आपसे कहेंगे कि "सर्वोदयवाले होकर झूठा व्यवहार करते हो, मक्कारी करते हो। इस तरह से धोखेबाजी भी करते हो।"

आप कहेंगे, "नहीं, आपने भी तो कुछ ऐसा थोड़ा-बहुत किया होगा।" "हम तो आखिर राजनीति में ही हैं। हम नहीं करेंगे, तो क्या होगा ? हमारा तो अधिकार ही है करने का, लेकिन आप तो राजनीति से अलग रहते हैं, तब आपको ऐसे छक्के-पंजे खेलने का कोई अधिकार नहीं है।" ऐसे आक्षेप वे करने लगते हैं। लोकनीति में इस तरह के पावित्र्यवाद और परहेज के लिए कोई स्थान नहीं। पावित्र्यवादियों की और परहेजवादियों की नीति लोकनीति नहीं है। राजनीति शब्द को लोगों ने बहुत परिमित कर दिया है। एनी बेसेंट ने कहा था कि अरस्तू ने तो राजनीति का अर्थ बहुत व्यापक किया, शुद्ध अर्थ में उसका प्रयोग किया। But those that followed him renounced it. पर उसके पीछे चलनेवालों ने उसके अर्थ को संकीर्ण और तंग बना दिया। शुरू प्लेटो के ही जमाने से हुआ। Shun this dirty politics where men do not contend without dust and heat.

प्लेटो ने अपने सारे शिष्यों को चुनौती दी कि यह अखाड़ा है, यहाँ पर जितने लोग कुश्ती लड़ते हैं, उनकी तबीयत तो गरम हो ही जाती है, लेकिन वे धूल भी उछालते हैं। नतीजा यह हुआ कि अरस्तू की राजनीति किनारे रह गयी और मेकियाव्हेली की राजनीति आ गयी।

आज की राजनीति

आजकल की राजनीति में क्या है ? सबसे बड़ा लोक-व्यवहार जो होता है, उसका नाम है—डिप्लोमेसी। यह बड़ा 'डिप्लोमेट' है। यह जानता है कि लोगों से किस तरह से पेश आना चाहिए। And what is diplomacy ? Diplomaco is knowing very well what you want, and understand very well what your opposit member wants, and putting what you want

in the terms of what he wants. यह डिप्लोमेट की परिभाषा है। मैं तो डिप्लोमेसी जानता नहीं। मैंने कहा कि मैं तो अध्ययन करता हूँ। अध्ययन में से डिप्लोमेसी की परिभाषा मैंने बता दी। Modern politics is an essay on public relations. And what are public relations? Where facts do not matter, what matters is the way in which you put them. In which men do not matter, what matters is the show they put up. It is not the man that matters, it is minikin that matters.

मनुष्य की कीमत उतनी नहीं रह जाती है, सार्वजनिक, पारस्परिक व्यवहार में वह मुत्सद्दी कहलाता है न? राजनीतिज्ञ कौन है? आप जो चाहते हैं, उसे वह खूब समझ ले और फिर आप जो चाहते हैं, उसे ऐसी भाषा में रखे कि ऐसा मालूम हो कि वह जो कहता है, वही आप चाहते हैं। इसे 'राजनीति' कहते हैं। इस राजनीति में लोगों ने कहा है कि ईमान बेवकूफी है। Honesty stupidity; Treachery astuteness, Deceit success.

प्रामाणिकता मूर्खता है। मक्कारी राजनीति-निपुणता है और दगाबाजी कामयाबी है। 'पॉलिटिक्स' का, राजनीति का यह अर्थ हो गया। जिसे आप पॉलिटिक्स कहते हैं, वह नागरिकता नहीं है। वह 'सिविक्स' नहीं है, वह 'क्वालिटी' नहीं है। पॉलिटिक्स वह नहीं है, जिसकी परिभाषा और जिसका प्रतिपादन अरस्तू ने किया है।

स्टेटमनशिप डिप्लोमेसी

दूसरी चीज, जिन लोगों ने 'पॉलिटिक्स' का आज 'स्टेटमनशिप डिप्लोमेसी' वगैरह माना है, उनके सारे सम्बन्ध मानवीय नहीं रह गये हैं, बल्कि औपचारिक हो गये हैं। औपचारिक सम्बन्धों से हार्दिक सम्बन्धों की तरफ, औपचारिक सम्बन्धों से वास्तविक

सम्बन्धों की तरफ कदम बढ़ाने का नाम राजनीति है। आज जो हमारे सम्बन्ध हैं, वे औपचारिक हैं, फार्मल हैं। 'इनफार्मल'—'कोर्डियल'—हार्दिक सम्बन्धों की तरफ हम कदम बढ़ाना चाहते हैं। यह लोकनीति है।

लोकनीति के विचार का आरम्भ मैंने किया मनुष्य की स्वतन्त्रता से। प्रश्न का उपक्रम मैंने यहाँ से किया—Organising for power., Organising for freedom. निर्वाचन-क्षेत्र बनाने का सवाल पेश हुआ, जिसे आप Constituencies (निर्वाचन-क्षेत्र) कहते हैं। निर्वाचन-क्षेत्र कैसे बने ? सम्विधान-परिषद् समाप्त होने के बाद यह समस्या खड़ी हुई कि अब निर्वाचन-क्षेत्र बनाने हैं। इसके लिए एक-एक सदस्य को बुलाकर पूछा कि आपका कोई सुझाव है ? मतदाताओं के प्रतिनिधित्व की सुविधा के लिए सुझाव पूछे गये थे। सभी सज्जनों ने अपने-अपने सुझाव रखे। एक ने कहा कि हमारी कुछ ज्यादा माँग नहीं है। यह बात हमारी समझ में नहीं आती है। यह विशेषज्ञों की बात है। इसलिए निर्वाचन-क्षेत्र आप बना दीजिये।

जिस व्यक्ति ने ऐसा जवाब दिया, वह जब लौटता है, तो उसके गुट के साथी पूछते हैं—"कहाँ गये थे ?" वहाँ, जहाँ Constituencies (निर्वाचन-क्षेत्र) बन रहे थे। वहाँ हमें बुलाया था। "तुमने क्या कहा ?" हमने कहा, "लोगों के लिए जैसी सुविधा हो, वैसे निर्वाचन-क्षेत्र बना दीजिये।" "तुम राजनीति खाक नहीं समझते, तुम्हारे जैसा नेता हमने कहीं नहीं देखा।" पूछा—"हमारी क्या गलती हुई ?" "कहीं ऐसा निर्वाचन-क्षेत्र बन जाय कि तुम भी नहीं चुने जा सकोगे, तुम्हारे साथी भी नहीं चुने जा सकेंगे, तुम्हारी पार्टी भी नहीं चुनी जा सकेगी, तो क्या होगा ?" तो वह कहता है—"मैंने यह नहीं सोचा था कि अपने लिए

निर्वाचन-क्षेत्र बनाना है। मैंने तो यह सोचा था कि मतदाताओं के लिए कौन्स्टीट्यूअन्सी चाहिए। मतदाताओं की सुविधा के लिए निर्वाचन-क्षेत्र होना चाहिए। मतदाताओं के प्रतिनिधित्व का जो क्षेत्र है, उसे निर्वाचन-क्षेत्र कहते हैं। अपने लिए Carving out a kingdom की स्वार्थ की बात नहीं थी।"

मुल्कगीरी के लिए हरएक का एक-एक क्षेत्र हो, यह 'सत्ता के लिए संयोजन' कहलाता है। स्वतंत्रता के लिये और प्रतिनिधित्व के लिए जो संयोजन होता है, उसमें मतदाता की सुविधा देखी जाती है। अपनी पार्टी या अपने उम्मीदवार की सफलता का विचार जहाँ अधिक हो, मतदाता की सुविधा का विचार जहाँ कम हो, वहाँ संयोजन सत्ता के लिए हैं, स्वतन्त्रता के लिए नहीं।

यह उदाहरण मैंने इसलिये दिया कि दोनों के बीच जो फर्क है, वह आपके सामने कुछ स्पष्ट कर दूँ। विषय मेरा यह था कि आखिर पशु और मनुष्य में जो अन्तर है, उसमें 'मनुष्य की बुद्धि' मनुष्य की विशेषता बतलायी गयी है। मनुष्य की बुद्धि के कारण ही उसे परम स्वातन्त्र्य है। मनुष्य का कर्म-स्वातन्त्र्य मनुष्य की विशेषता है।

कर्म-स्वातन्त्र्य और समाज-परिवर्तन

इस कर्म-स्वतन्त्र्य के दो लक्षण हैं—(१) अपने बुरे कामों के लिए वह निन्दा पाता है, (२) अपने अच्छे कामों के लिये वह प्रशंसा पाता है। अच्छे कामों के लिये प्रशंसा, बुरे कामों के लिये निन्दा, यह मनुष्य का कर्म-स्वातन्त्र्य है। जहाँ अच्छे कामों के लिये प्रशंसा न हो, बुरे कामों के लिये सजा न हो, वहाँ कर्म-स्वातन्त्र्य नहीं है। आप कहेंगे कि क्या समाज-परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं ? फिर तो वह पुराना कर्म-सिद्धान्त आ गया। अब कर्मवाद नियतिवाद में, देववाद में परिणत हो जायगा।

फिर मनुष्य के लिए समाज-परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

समाज-परिवर्तन की आवश्यकता है। वह किसलिए है? इसलिए कि अच्छे कामों के अवसर बढ़ते चले जायँ, बुरे कामों के कारण कम होते चले जायँ। समाज में बुरे कामों के लिए जो कारण होते हैं, जो निमित्त होते हैं, वे समाज से मिटाये जायँ; अच्छे कामों के लिए जिन अवसरों की आवश्यकता होती है, वे अवसर उसे मिलते चले जायँ। Equality of opportunity के साथ Quality of opportunity भी जोड़नी पड़ेगी। सिर्फ सबको समान अवसर मिले, इतना ही काफी नहीं है। जो अवसर मिले, वह सुअवसर मिले और कुअवसर न मिले—अच्छे अवसर मिलते चले जायँ, बुरे अवसर न मिलें। इसके लिए समाज में जो परिवर्तन करना पड़ता है, उसे 'क्रांति' कहते हैं। मनुष्य का कर्म-स्वातंत्र्य भी रहना चाहिए। कर्म-स्वातन्त्र्य के रहते हुए समाज परिवर्तन होना चाहिए। ये दो चीजे साथ-साथ करनी हैं। ये लोकनीति नहीं है। यह तो केवल स्वतंत्रता है, स्वच्छन्दता है, स्वैरता है।

लोकनीति की तजवीज

तो लोकनीति कब होगी? जब अपनी मर्जी के मुताबिक चलने को आजादी हो, लेकिन मर्जी में अच्छे-अच्छे काम करने की वृत्ति बढ़ती चली जाय और बुरे काम करने की वृत्ति कम होती चली जाय—इस तरह की समाज की व्यवस्था होनी चाहिए। समाज की यह जो तजवीज है, उसे हम 'लोकनीति की तजवीज' कहते हैं। यह लोकनीति की व्यवस्था है। राज्यवाद में, राजनीति में यह व्यवस्था नहीं होती। बूढ़े का जवान बेटा मर गया, यह रामचंद्रजी के दरबार में पहुँचा।

रामचंद्रजी से कहने लगा—"राम तेरा राज पापियों का राज है, तेरे राज में पाप हो रहा है, और तू पापी राजा हो गया। जवान बेटा मर गया, जरूर कुछ दोष तेरे राज में हैं।" राम का ही राज्य क्यों न हो, लेकिन प्रजा से राजा प्रधान है। राजा जो करता था, वैसा जमाना बनता था। काल का कारण, जमाने का विधाता राजा है, फिर वह राम ही क्यों न हो? डिक्टेटरशिप और वेलफेयरिज्म में मैं आपसे पूछ सकता हूँ—"मेरे बेटे को इन्फ्ल्यूएंजा क्यों हुआ? उसे खाँसी क्यों हुई? हमारे घर में मच्छर-खटमल क्यों हैं? गाँव में चूहें क्यों बढ़ रहे हैं? चीन में मक्खियाँ नहीं हैं, यहाँ मक्खियाँ क्यों?"—ये सवाल राजा से पूछे जा सकते हैं। मेरी तबीयत अगर चोरी करने की हो और मैं चोरी कर लूँ और अदालत में आप मुझे पेश करें, तो मैं कह सकता हूँ कि क्या करूँ? राज ही ऐसा है कि मैंने चोरी की है। दंड देना है, तो राजा को दीजिये, मुझे देने का कोई मतलब नहीं है। लेकिन इस बात को कोई डिक्टेटरशिप नहीं मानता और न कोई वेलफेयर स्टेट ही मानता है। दोनों नहीं मानते। उनसे आप पूछिये कि "वेलफेयरवाले हो तो गोली चलाने के मौके क्यों आते?" "तुम ढेले फेंकते हो, इसलिए आते हैं।" वे जवाब देंगे कि "ढेले की आप पर जिम्मेदारी है।" मेरे ही कारण मौके आते हैं और मैं ही गोली चलाता हूँ—यह जिम्मेदारी कोई राज्य लेने को तैयार नहीं है। इसका मतलब यह है कि नागरिक का कर्म-स्वातंत्र्य शेष रहना चाहिए। इसीमें उसकी मनुष्यता का गौरव है। अगर मनुष्य का यह गौरव शेष रह जाता है, तो आपके मनुष्य के कर्म के लिए बहुत-सी अवांतर प्रेरणाएँ खोजनी नहीं पड़ेंगी। उसके विचार और उसके दोषों के लिए समाज में अवसर न रहें, केवल उसके गुणों के प्रकट होने के लिए समाज में अवसर रहें, तो आपको और दूसरी प्रेरणा खोजनी ही नहीं

पड़ेगी। प्रेरणा का सवाल अपने-आप हल हो जायगा। राजनीति में और लोकनीति में यही अन्तर है।

जिम्मेवार नागरिकों के पारस्परिक सम्बंध

राजनीति में नागरिक को जिम्मेदारी कम होती चली जाती है। अच्छे-बुरे कामों के लिए वह जिम्मेवार नहीं रहता। और जो जिम्मेवार नहीं रहता उसमें पुरुषार्थ नहीं रहता। पुरुषार्थ तभी रहता हैं, जब दायित्व हो, जब जिम्मेवारी हो। मनुष्य का कर्म-स्वातंत्र्य उसकी विशेषता है। 'लिबर्टी' का—मनुष्य की स्वतन्त्रता का मेरा अर्थ है, अपने अच्छे कामों के लिए भी वह जिम्मेवार होगा, अपने बुरे कामों के लिए भी वह जिम्मेदार होगा। ऐसे जो जिम्मेवार नागरिक होंगे, वे नागरिक एक दूसरे के साथ कौटुम्बिक संबंध कायम करेंगे।

'फार्मल' और 'इनफार्मल' दो चीजें मैंने आपको बतायीं। फार्मल रिलेशन, कॉन्स्टीट्यु शनल, इन्स्टीटयुशनल। कल मैंने बतलाया, सदस्यता वैधानिक होती है, संस्था की होती है। मैंने बताया था कि साम्प्रदायिक सदस्यता का तो निवारण करना ही होगा। मार्क्स ने हमारे सामने जो चित्र रखा था, वह स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है, लेकिन उसका मतलब लोगों ने समझा कि हम यदि वर्ग-निराकरण कर लेंगे, तो उतने से काम हो जायगा। 'वर्ग निराकरण' शब्द आपको प्रिय न हो, तो आप कुछ भी नाम उसे दे सकते हैं। चाहे उसे सर्वोदय समाज कहें, चाहे कम्युनिस्ट सोसाइटी या सोशलिस्ट समाज कहें, चाहे सोशालिस्टिक पेटर्न। ओर भी कोई नाम दे सकते हैं। उसकी मूल बात मैं आप लोगों के सामने रख देना जरूरी समझता हूँ। किसीको अपनी मेहनत, अपनी सिफत और अपनी प्रतिभा बेचने की जरूरत न हो, दूसरे किसीको उसे खरीदने का मौका न मिले, इतनी बात उस समाज

में अगर नहीं है, तो मनुष्य की स्वतन्त्रता तो बिलकुल हो ही नहीं सकती।

माँओ की बात

कल मैंने माँओ की यह बात एक दूसरे सिलसिले में कही थी कि "हमारी क्यारी में जो गुल खिलते हैं वे तो फूल हैं, पर तुम्हारी क्यारी में जो खिलते हैं, वे काँटे हैं।" माँओ दुनिया के महान् प्रतिभाशाली क्रान्तिकारियों में से हैं और उनमें अपनी उपज भी है, अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा भी है। ऐसे मनुष्य ने जब यह बात कही, तो उसको समझने की भी आवश्यकता है। वह आवश्यकता यहाँ आ जाती है। एक मनुष्य को खरीदने की आजादी है। दूसरे मनुष्य को मजबूरी से अपने-आपको बेचने की जरूरत है। ऐसे समाज को जो बनाये रखना चाहते हैं, उनके विचार काँटे फैलाते हैं। ऐसे समाज को जो बदलना चाहते हैं, उसके बाग में फूल खिलेंगे। हरएक का अपना रंग होगा। हरएक की अपनी सुगन्ध होगी। हरएक का अपना रूप होगा। रूप रङ्ग और सुगन्ध से हर फूल झूमता होगा—डहडहाता होगा। सब अलग होंगे, लेकिन इनमें से कोई फूल ऐसा नहीं होगा, जो काँटों को बढ़ाना चाहेगा। यह बात माँओ ने बाद में कही। हमने तो यह कहा था कि सबको अपने-अपने विचार रखने की आजादी होगी। लेकिन आजादी का मतलब अगर यह हो कि गुलामी को भी रखने की आजादी हो, तो आजादी का कोई मतलब नहीं रह जाता। भगवान् के पास क्या नहीं है? लोगों ने पूछा—"उसके पास तो सब कुछ है।" लेकिन अगर सब कुछ है, तब तो एक चीज है ही नहीं उसके पास। कौन-सी? अभाव। अभाव नहीं है, विपन्नता नहीं है, दरिद्रता नहीं है। कहा—"यह कोई गौरव है? यह उसका दोष नहीं है, यह उसका गौरव है।" इसी तरह से जब हम विचारों की

स्वतन्त्रता का उल्लेख करते हैं, तो शैतान के वकील तक सबको आजादी है। फिर आजादी किसको नहीं हैं? जो दुनिया की आजादी को ही मिटा देना चाहता है। एक मनुष्य को अपने आपको बेचना पड़ता है और दूसरे मनुष्य को उसे खरीदने का मौका है—इस तरह के समाज को जो बनाये रखना चाहते हों, उनके लिए मौका नहीं हैं। बाकी सबके लिए मौका है।

लोकनीति और विचार की स्वतन्त्रता

लेकिन उनके विचार को भी समाज में रहने नहीं देंगे या बढ़ने नहीं देंगे, इसका साधन कौन-सा होगा, यह एक स्वतन्त्र विचार है। अब मैं आपके सामने इतना ही रख रहा हूँ कि लोकनीति में विचार की स्वतन्त्रता के लिए अवसर है? जिसमें मनुष्य की कर्म-स्वतन्त्रता अबाधित रहेगी। मनुष्य की कर्म-स्वतन्त्रता की भी क्या कोई मर्यादा है? यहाँ लोक-जीवन की वे मर्यादाएँ आ जाती हैं, जिन मर्यादाओं का मैंने कल उल्लेख किया था। लोक-जीवन की मर्यादा का उल्लेख करते हुए मैंने कहा था कि एक गाँव में अगर अस्पृश्यों के दो ही मकान हैं और सवर्णों के ९८ मकान हैं या ९८ फीसदी सवर्ण अपनी सभा में एक जगह बैठकर एक मत से अगर यह निर्णय कर देते हैं कि अस्पृश्यों के ये दो मकान हमेशा के लिए मिट्टी के ही रहने चाहिए, पक्के कभी नहीं बनने चाहिए—तो यह सर्वानुमति तो है, लेकिन लोक-जीवन की मर्यादा के प्रतिकूल है, उसके विरुद्ध है। इसी तरह समाज में जो लोग अमीरी और गरीबी के भेद को रखना चाहते हैं; मालिक और मजदूर के भेद को रखना चाहते हैं, एक इन्सान को मेहनत बेचनी पड़े, दूसरा इन्सान मेहनत खरीद सके, इस तरह की समाज-व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं, वे लोकनीति के प्रतिकूल हैं; क्योंकि वे लोकजीवन की मर्यादाओं का पालन नहीं करते, उल्लंघन करते हैं। लोकजीवन की मर्यादा एक

के लिए नहीं है, सबके लिए है। अगर सबके लिए है, तो उन लोगों के लिए भी है, जो समाज के सामने अपने मतों का प्रतिपादन करना चाहते हैं।

सम्प्रदायवाद का निराकरण

यहाँ पर मार्क्स की बात आती है, वर्ग-निराकरण की बात आ जाती है। लेकिन वर्ग-निराकरण काफी नहीं हैं, सम्प्रदाय-निराकरण की भी आवश्यकता है। सम्प्रायवाद के निराकरण की भी आवश्यकता है। इतना ही मैं नहीं कह रहा हूँ, आगे चलकर वह दिन आना चाहिए, जिस दिन सम्प्रदाय भी नहीं रहेंगे। क्योंकि जब तक सम्प्रदाय रहेंगे तब तक साम्प्रदायिक सदस्यता रहेगी और जब तक साम्प्रदायिक सदस्यता रहेगी, तब तक नागरिकता से उसका विरोध पैदा होगा। कभी नागरिकता से विरोध पैदा होगा और कभी मानवता से विरोध पैदा होगा। इसी में से अन्त में जाकर सम्प्रदायवाद पैदा हो जाता है। जाति-निराकरण, सम्प्रदाय-निराकरण, वर्ग-निराकरण—आज तीनों की आवश्यकता है। जब तक ये तीनों बातें सिद्ध नहीं होंगी, लोकनीति की स्थापना नहीं हो सकती। इसलिए लोकनीति के विचार में, कल भी मैंने मार्क्स का, लेनिन का और ट्रॉटस्की का उल्लेख किया था। उस उल्लेख को आज मैं स्वतंत्रता के साथ जोड़ रहा हूँ। नागरिक की जो स्वतंत्रता होगी, उसीके लिए हम लोकनीति का संयोजन करना चाहते हैं। लोकनीति में जितना संयोजन होगा, जो समाजव्यवस्था होगी, वह नागरिक स्वतन्त्रता के लिए होगी। लेकिन नागरिक स्वतन्त्रता का अर्थ क्या होगा? यही कि किसीकी स्वतंत्रता का अपहरण कोई दूसरा नहीं कर सके।

नागरिक की राज से माँगें

डायोजनिस्ट से सिकंदर ने पूछा—"मैं तुम्हारे लिए क्या कर

सकता हूँ ?" वह धूप खा रहा था। सिकंदर उसके सामने खड़ा हो गया, तो उसकी परछाइं उसके ऊपर पड़ने लगी। वह बोला—"बड़ी मैहरबानी होगी, अगर आप हट कर खड़े हो जायँगे और धूप मुझ पर आने देंगे। इससे ज्यादा आप कुछ नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिए।" साधारण नागरिक को राज से इतनी ही माँग होती है जिसके हाथ में हुकूमत है, वह कहता है कि "भाई हुकूमत करने दे।" उधर नागरिक कहता है—"हुकूमत कम-से-कम हो।" आप किसी भी व्यक्ति से पूछिये कि भाई, आप क्या चाहते हैं, तो वह कहेगा कि राज्य का दखल कम-से-कम हो। हमें अकेले रहने दो। तीन तरह की माँगें कीं—(१) भगवान् और भक्त के बोच कोई बिचोनिया न हो। पुरोहित पण्डे, पुजारी हमें नहीं चाहिए। (२) दूसरे ने कहा—"बनानेवाले और बरतनेवाले Consumer और Producer. के बीच में कोई बिचोनिया न हो।"

आगे की माँग

अब हम आगे की माँग कर रहे हैं। वह माँग है—(३) नागरिक और नागरिक के बीच में कोई सत्ताधारी बिचोनिया न हो। व्यक्ति और समाज के बीच भी बिचोनिया न हो। यह लोकनीति की माँग हैं। पहले लोगों ने क्या माँगा ! Freedom from Government. हमें राज्य से ही स्वतंत्रता चाहिए। पर लोग स्वतंत्रता अपनी-अपनी रखें। पर वे रख नहीं सके। तो फिर उन्होंने जो माँगा, उसमें अतलांतक चार्टर (Atlantic Charter) वगैरह सब आये। Freedom from hunger, Freedom from want, Freedom from fear, Freedom from aggression–आदि माँगा। 'Freedom from' से मतलब क्या हुआ ? हम भूखे न रहें—इसकी जिम्मेवारी किस पर ? तुम पर। आज तो Freedom from hunger (क्षुधा से मुक्ति) हुई नहीं है। हमें किसी वस्तु की कमी

न रहे। जिंम्मेवारी किस पर? तुम पर। हम पर कोई हमला ही न करे, कोई Exploit (शोषण) भी न करे और कोई आक्रमण भी न करे। शोषण भी न हो, आक्रमण भी न हो, जिम्मेवारी किस पर? तुम पर। तो राज कहता है कि अगर जिम्मेवारी हमारी, तो आजादी भी हमारी। यह बँट कैसे सकती है? देखिये, माँगने में कैसा फर्क पड़ गया! पहला आदमी व्यापारी, प्रोटेस्टेण्ट, प्यूरिटन, नान कन्फार्मिस्ट क्या माँगता था? वह कहता था कि State is an ugly oppression. यह राज हमें नहीं चाहिए। बड़ी तकलीफ होती है, दूर रखिये अपनी दस्तंदाजी। दखल आपका कम-से-कम हो। पहली माँग थी। अब क्या हुआ? माँग कुछ नहीं है, सब हमारे अधिकार हैं। कौन-से अधिकार हैं? हम भूखे न रहें। हमें किसी चीज की कमी न हो, किसीसे हमें डर न हो। हम पर कोई आक्रमण न करे। अब मुझे बतलाइये कि रावण और हिरण्यकशिपु ने भगवान् से इससे कुछ कम माँगा था? विष्णु भगवान् से ये ही सब वरदान माँगे थे। और इतने वरदान अगर हम राज्य से माँगने लगें, तो दिल्लीश्वर और जगदीश्वर एक हो जाता है या नहीं? दिल्लीश्वर हो या जगदीश्वर, यह 'डिवाइन राइट थिअरी' है राज्य-वाद की। वे दोनों एक ही हो गये। याने भगवान् की जितनी शक्ति है। पहले तो हम हँसते थे। मैं खुद हँसता था, क्योंकि गांधी था उस वक्त। गाँधीजी का आन्दोलन था। एक को बुखार आ गया तो कहता है कि गान्धी के सबब से बुखार आ गया, तो हम हंसते थे। लेकिन आज तो सही माना जायगा न? सर्दी हो गयी, खाँसी हो गयी; कारण क्या है—राज्य। अब इस वक्त भगवान् से कम सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य नहीं है। माँग हमारी यह है कि 'Freedom from' की जगह 'Freedom for' होने दें। कुछ ऐसी भावरूप आकाक्षाएं होनी चाहिएं मनुष्य की, जिसके लिए वह स्वतन्त्रता चाहे। Freedom from तो बहुत हो गया, अब Free-

dom for की जरूरत है। तो Freedom for what ? For Intimate relationship with my neighbour. मेरे पड़ोसी के साथ मुझे घनिष्ठ और हार्दिक सम्बन्ध कायम करने हैं, इसलिए मौका चाहिए। उसके लिए मौके की जरूरत है। हार्दिकता के लिए जब तक मौका नहीं होगा, मैं कायम नहीं कर सकूँगा। Freedom for what ? For establishing a society where all will be members of onc another, not members of this party, or that party. हमें ऐसा समाज खड़ा करना है, जहाँ सब एक-दूसरे के सदस्य होंगे, इस दल के या उस दल के नहीं। इस सम्प्रदाय या उस सम्प्रदाय के नहीं। इस राज्य या उस राज्य के नहीं। इस देश या उस देश के नहीं। एक-दूसरे के सदस्य से मतलब है—हम एक-दूसरे के पासदार होंगे। हम ड्रायव्हर्स एक-दूसरे के नहीं होंगे। I shall be my brothers keeper. मैं उसका पहरेदार हूँ। वह मेरा पहरेदार है। नागरिक जब एक-दूमरे के संरक्षक बन जाते हैं, तो दो नागरिकों के बीच तीसरी संरक्षक शक्ति की आवश्यकता नहीं रहती। यह लोकनीति है। हमें इस तरफ को कदम बढ़ाना है। नागरिकों में जब एक-दूसरे का आपस में विश्वास होता है, एक-दूसरे के लिए भय नहीं होता, तो तीसरे की आवश्यकता नहीं होती।

गरीबी चुराने कोई नहीं आता

आदिवासियों के एक गाँव में जाने का मौका हुआ। उनके पास कोई जगह नहीं थी। मकान में एक ही कमरा था। उसमें खिड़की नहीं थी। वहीं रोटी बनती थी। सारे मकान में धुआँ होता था। कुछ मुर्गियाँ थीं, बच्चे भी इधर-उधर खेलते थे। उन्होंने सोचा कि मुझे वहाँ सुलाना ठीक नहीं होगा। बगल में एक झोपड़ी थी, वहाँ मेरी खाट बिछा दी। हमने पूछा—"यह जगह आपके पास वहाँ से आयी ?" वह हमारा अपमान या मजाक नहीं करना चाहता

था, पर उसने वस्तुस्थिति बतलायी कि "हम इसमें सूअर रखते हैं। हमारे पास और जगह नहीं थी। हमने इसे आज साफ कर लिया।" मैंने कहा--"खैर साफ कर लिया तो अच्छा ही किया।" थोड़ी देर में हमें लगा कि यह व्यक्ति यहाँ सूअर रखता था। रात को कोई घुस आये तो क्या होगा? हमने पूछा--"इसमें किवाड़ नहीं हैं?" बोला--"इसमें किवाड़ों की जरूरत नहीं है।" क्यों? "आसपास कोई चोर नहीं है?"

"चोर तो बहुत हैं।" "तो फिर तुम्हारे घर में किवाड़ क्यों नहीं?" बोला--"हम ऐसे भाग्यवान् कहाँ कि हमारे घर में चोर आये?"

"अब यह बिलकुल अनपढ़ मनुष्य कह रहा है। वह कह रहा है कि हमारा ऐसा भाग्य नहीं है। क्यों? भाग्य किसलिए चाहिए? तो कहता है--"हमारे पास एक ही चीज है गरीबी और उसको चुरानेवाला कोई नहीं।"

मैंने कहा--"तब तो आपको पुलिस और फौज की जरूरत नहीं होती।"

वह जबाब देता है कि "पुलिस और फौज की हमें क्या जरूरत पड़ती होगी?"

"पुलिसवाला कभी नहीं आता तुम्हारे यहाँ?"

कहता है—"आता है।"

"कब आता है?"

"आपकी घड़ी गुम हो जाय, खो जाय, तो खोजने के लिए हमारे मकानों में आता है।"

"पुलिस और फौज किसलिए है?"

बोला—"आपकी अमीरी को बचाने के लिए है और हमारी गरीबी को बचाने के लिए। "वह दोनों की हिफाजत करती है।

पासदार और पहरेदार

पासदार और पहरेदार में यह अन्तर है। तब तक पासदार नहीं हो सकता, जब तक तीसरे पहरेदार की जरूरत है। जब तक एक-दूसरे का भरोसा नहीं कर सकते, तब तक कहते क्या है? Eternal vigilence is the price for liberty. Vigilence against whom ?Vigilence against your neigebour. रात-दिन जागरूक ही रहे, जागता ही रहे।

एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी के गाँव में गया। उसके मकान में सोया। दूसरे दिन जाने को हुआ तो मेहमान को धन्यवाद देने लगा—"हम आपका बहुत एहसान मानते हैं। आपके बहुत ऋणी है।" "क्यों ?" "आप बड़े कृपाशील हैं।" "कैसे ?" "रातभर हमारे मकान में सोये, मकान में आग नहीं लगायी। आप बड़े सभ्य हैं।"

वह कहने लगा कि "हम भी आपको धन्यवाद देते हैं।" "किसलिए ?" "हम गाफिल आपके मकान में सोते रहे। आपने हमारी गर्दन नहीं काटी !"

मुझे आप बतलाइये कि इस स्तर पर लोक-जीवन चल सकता है ? लोगों ने यह मान लिया कि मनुष्यों का पारस्परिक्र सख्यभाव, मित्र-भाव, उनका पारस्परिक सद्व्यवहार, राज्य, पुलिस और फौज के कारण होता है। यह भ्रम है। आजादी की कीमत जागरूकता नहीं है, सावधानी नहीं है। आजादी की कीमत विश्वास है, पारस्परिक विश्वास। जिस समाज-व्यवस्था में नागरिक पारस्परिक विश्वास की तरफ कदम बढ़ा सकता है, उसका नाम है—लोकनीति। इस तरह की लोकनीति को तरफ हमें कदम बढ़ाना है।

●

आत्म-निवेदन : ३ :

सवाल-जवाब का आशय मैं जैसा समझा हूँ, वह यह है कि सवाल तो सारे भाषण और अध्ययन के बाद भी, आपके ही नहीं, मेरे भी मन में उठेंगे। अगर मेरे मन में सवाल न उठें, तो मेरा अध्ययन आगे नहीं बढ़ सकता। जीवन गतिशील है। वह रुक नहीं गया है और पूर्ण भी नहीं हुआ है। इसलिए जैसे-जैसे मेरा अध्ययन और चिन्तन बढ़ता चलेगा, वैसे-वैसे मेरे मन में भी सवाल उठते चले आयेंगे। आपसे मेरी प्रार्थना यह है कि सवाल अगर हो तो वह मेरी व्याख्यानमाला में अध्ययन जहाँ तक पहुँचा है, उसे आगे बढ़ाने के लिए ही हो। मैंने प्रश्न को हमेशा जिज्ञासा की दृष्टि से समझा और देखा है। विवाद की अवस्था को मैं पार कर चुका हूँ। शारीरिक अवस्था में भी, बौद्धिक अवस्था में भी।

अराज्यवाद और शासन-मुक्ति

इन व्याख्यानों से कुछ लोगों को ऐसा भ्रम हो सकता है कि कहीं मैं अराज्यवाद का प्रतिपादन तो नहीं कर रहा हूँ ? अराज्य-वाद, जिसे पुराने लोगों ने Anarchism, अनार्किज्म कहा। अराज्यवाद दो तरह का होता है। एक दार्शनिक अराज्यवाद, जिसे फिलोसॉफिकल अनार्किज्म कहते हैं, और दूसरा आर्किज्म, अराज्य-वाद, सामाजिक अराज्यवाद या क्रांतिकारी अराज्यवाद। इसका प्रतिपादन सबसे पहले फ्रांस के कुछ सिंडिकेलिस्टों ने किया है। क्या मैं उसका प्रतिपादन कर रहा हूँ ? इतना मैं निवेदन कर दूँ कि अराज्यवाद अलग चीज है, शासन-मुक्ति अलग चीज है। अराज्यवादियों के सिद्धान्त, अराज्यवादियों के कुछ आदर्श, अराज्यवादियों की कल्पना का कुछ समावेश शासनमुक्त समाज

में होता है, लेकिन अपने में शासन-मुक्त समाज एक स्वतंत्र, भावरूप कल्पना है। इसमें नागरिक के विषय में यह समझा गया है कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब नागरिक भी शासनातीत होगा, केवल शोषणतीत ही नहीं। वह शोषणमुक्त ही नहीं, शासन-मुक्त भी हो सकेगा। समाजवादी और साम्यवादी क्रान्तिकारियों ने माना है कि अगर शाषण नहीं रहेगा तो शासन की भी आवश्यकता बहुत कम हो जायगी, अगर नष्ट न हो तो। शोषण-मुक्ति के साथ शासन-मुक्ति उसी तरह आ जायेगा, जैसे नींद आते ही आँख की पलकें अपने-आप गिर जाती हैं। नींद में आँख बन्द करने के लिए पलक आँख पर गिराने की कोई अलग से कोशिश नहीं करनी पड़ती।

लोकनीति सत्ताविरोधी नहीं होती

आखिर हम पहुँचना कहाँ चाहते हैं ? आपके मन में यह भ्रम न रहे और अगर यह भ्रम हो, तो मेहरबानी करके उसे निकाल दीजिये कि राजनीतिज्ञ कोई अलग्र है, वह हमसे कुछ घटिया है, हीन है, उसे हम कुछ हिकारत की नज़र से देखते हैं, तुच्छता की दृष्टि से देखते हैं। राज्य के बहिष्कार का यह आन्दोलन है, सत्ता के धिक्कार का यह आन्दोलन है, इस प्रकार का विचार आपके मन में न आये। यह बहिष्कार का भी आन्दोलन नहीं है। यह सत्ता-विरोध का भी आन्दोलन नहीं है। लोकनीति सत्ता-विरोधी नहीं होती। सत्ता के बहिष्कार की भी नहीं होती। लोकनीति सत्ता-निरपेक्ष लोक-चारित्र्य पर आधार रखती है, सत्ता-निरपेक्षता अपने में एक स्वतन्त्र भावरूप कल्पना है। सत्ता-विरोध में तो वे भी शामिल हो सकते हैं, जो वर्तमान शासन-संस्था के खिलाफ हों—जिन्हें आप क्रान्तिकारी कहते हैं या विरोधी पक्ष के कहते हैं। विरोधी पक्ष भी प्रचलित सत्ता का विरोधी होता है।

क्रान्तिकारी भी प्रचलित राज्य-संस्था का विरोधी होता है। इतना ही आशय लोकनीति का नहीं है। लोकनीति का आधार लोक-चारित्र्य है, जिसे आप Civic Character कहते हैं।

नागरिक के चारित्र्य के आधारभूत जो सिद्धान्त होते हैं, उन सिद्धान्तों को लेकर लोकनीति चलती है। इसलिए आप अपने मन से इन सारी बातों को निकाल दीजिये। शायद पहले दिन ही मैंने कहा था कि आज भी सत्ताधारी पक्ष में और विरोधी पक्ष में कई व्यक्ति ऐसे हैं, जिनको उतना ही पूज्य, प्रतिष्ठित और सम्मानित मानते हैं, जितना कि—उदाहरण के लिए कह रहा हूँ—हम लोग विनोबा को मान सकते हैं। कुछ व्यक्तियों को कई अर्थों में विनोबा से भी बड़ा मानते हैं। इस तरह के व्यक्ति आज शासनकर्ताओं में, राज्यकर्ताओं में भी हैं। इसलिए अगर आपके मन में ऐसा कोई विचार आ गया हो कि तपस्वियों, वैरागियों के लिए यह लोक-नीति है, तो उस विचार को आप लोग अपने मन में से निकाल दें।

प्लेटो की बात

प्लेटो का कल मैंने जिक्र किया था। उस पर से कुछ लोगों को यह खयाल हो सकता है कि प्लेटो ने तो कहा था कि जो तत्त्वज्ञ हैं, वही राज्यकर्ता हैं। अगर तत्त्वज्ञ ही राज्यकर्ता हों, तो फिर लोकनीति के लिए क्या अवसर है? साधारण मनुष्य तो तत्त्वज्ञ, त्यागी, तपस्वी हो नहीं सकता है, और फिर त्यागी, तपस्वी की व्याख्या क्या हो, पहचान क्या हो? एक संन्यासी मिले थे, जो पुराने जमाने में क्रान्तिकारी पक्ष के थे। वे क्रान्तिकारी रहे, इसकी पहचान क्या थी? तो लोगों ने बतलाया कि उनके शरीर पर जो काषाय वस्त्र था, गेरुआ कपड़ा था, उसे हटाते ही आप उनके शरीर पर गोलियों के निशान देखेंगे। उनके शरीर पर

वीरता के निशान हैं। तो ऐसे लोगों में जो लोकनीति का आचरण और प्रतिपादन करेंगे, क्या कुछ आध्यात्मिक निशान होंगे ? उनके शरीर पर तपस्या के कुछ निशान होंगे ? ऐसी कोई चीज हमारे मन में नहीं है।

हम चाहते क्या हैं ?

फिर हम चाहते क्या हैं ? आज की सरकार में, राज्य-संस्थाओं में कुछ विभाग ऐसे हैं, जिनके बारे में हरएक यह चाहता है कि इनसे काम अगर न लिया जाय, तो बहुत अच्छा। इनका उपयोग करना ही पड़े, तो कम-से-कम करना चाहिए और इस दृष्टि से करना चाहिए कि आगे इनका उपयोग बिलकुल ही न करना पड़े। बजट जब पेश होता है, तो बहुत-से मद होते हैं। पूछा यह जाता है कि शिक्षण पर कितना खर्च कर रहे हैं ? बतलाया जाता है कि इतना खर्च हम कर रहे हैं। तो संसद के सदस्य कहते हैं—"नहीं, इतना काफी नहीं है। शिक्षण पर अधिक खर्च होना चाहिए। पुलिस पर बहुत ज्यादा खर्च हो रहा है; वह कम होना चाहिए। तो उत्तर मिलता है—"क्या करें भाई, पुलिस से काम लेने की जरूरत होती है।"

"जरूरत होती है, तो आप नाकाबिल हैं, Inefficient हैं"—विरोधी पक्ष कहता है, जनता भी कहती है। फिर क्या करें ? कौन-सा प्रशासन कुशल, निष्णात, दक्ष है ? निष्णात, दक्ष प्रशासन वह है, जिस प्रशासन में पुलिस और फौज से कम-से-कम काम लेना पड़ता है। इस देश में जितनी राजनीतिक पार्टियाँ हैं, वे आज इस बात को मानती हैं कि पुलिस और फौज से कम-से-कम काम लेना पड़े तो बहुत अच्छा है। पुलिस को भेजना पड़ता है, तो कहते हैं, क्या करें ? विवश होकर पुलिस भेजनी पड़ती है। हर सरकार कहती है कि अगर पुलिस का खर्च कम हो जाय, तो हमको

जितनी खुशी होगी, दूसरों को उतनी नहीं हो सकती।—यों एक महकमा मैंने आपके सामने रखा ?

दूसरा महकमा न्याय का है। कचहरी, अदालतों का विभाग है। आप किसी भले आदमी से पूछिये कि आप कचहरी में कितनी दफ़ा गये ? अगर वह वकील न हो, तो इसमें अपना अपमान मानता है। वकील भी वकील की हैसियत से हो कचहरी में जाना चाहता है, दूसरी किसी हैसियत से नहीं जाना चाहता। हर आदमी यह कहता है कि हम कचहरी की सीढ़ी नहीं चढ़ना चाहते हैं। अदालत में 'कम-से-कम' काम हो, कानून का अमल हो, लेकिन कानूनबाजी कम हो। लोग Law abiding (कानून माननेवाले) हों, लेकिन Litigants (झगड़ालू) न हों। Legality, Legalism, Litigation कम हो, लोग शान्तिपरायण हों। समाज में शान्ति रहे, कानूनपरस्ती रहे, कानून का अमल हो, लेकिन कानून का दखल कम-से-कम हो—यह बात सब लोग चाहते हैं।

तीसरी चीज हम क्या चाहते हैं ? दो विभागों के नमूने रख दिये। अब तीसरा एक विभाग रख रहा हूँ। स्वास्थ्य विभाग। अस्पताल दवाखाना। दवाखानों पर और स्वास्थ्य पर खर्च अधिक हो, लेकिन दवाखानों का उपयोग कम-से-कम करने की जरूरत हो। यह बात हर सरकार चाहती है। हर मनुष्य चाहता हैं कि शहर के हर चौराहे पर दवा की दूकान हो, लेनिन हमें वहाँ कम-से-कम जाना पड़े।

जेलखाना हो, लेकिन जेलखानों की आबादी कम हो। कोई यह नहीं कहता कि जेलखानों की लोक-संख्या बढ़े। कभी किसी ने जेलखानों में जाकर कैदियों को आशीर्वाद दिया है कि 'May your tribe increse !' 'आपकी बिरादरी बढ़े !' हम यह नहीं कह रहे हैं कि आज ही वह शासन नहीं रहेगा या कल ही यह शासन

नहीं रहेगा। हमारा कहना यही है कि शासन को आवश्यकता शीघ्र-से-शीघ्र समाप्त हो।

'शीघ्र-से-शीघ्र' की अवधि

पर 'शीघ्र-से-शीघ्र' की अवधि कितनी होगी? यह आपके पुरुषार्थ पर निर्भर होगा। कोई व्यक्ति इस अवधि को निर्धारित नहीं कर सकता। हम कहते हैं कि हम तुरन्त करेंगे। तुरन्त, Immediate का मतलब क्या है? इसका मतलब है, जब आप कर देंगे तब। बम्बई में हम-जैसे लोग मेहमान के तौर पर आते हैं, तो उनसे यजमान कहता है, तुरन्त भोजन बन जायेगा। पाँच मिनट में बन जाता है। पर ५० मिनट में भी नहीं बन पाता। तो यह सापेक्ष है। इसलिए हम उसकी कोई मर्यादा नहीं बाँधते।

पहले दिन मैंने आपसे कहा था कि तुरन्त का मतलब है—हर क्षण। बेटा बीमार है, कब तक अच्छा होगा? तुरन्त अच्छा होना चाहिए। वह दिन, तुरन्त का दिन कब आयेगा? दवा की तासीर और डॉक्टर की कुशलता पर निर्भर है। हम इतना ही कहते हैं कि वह तुरन्त होना चाहिए। तब तक क्या होगा? तब तक जहाँ पहुँचना है, उस तरफ को मुँह रहे और उसी तरफ को कदम बढ़ें। अपने मुकाम, मकसद की तरफ आपका रुख होना चाहिए। सत्ता का मुँह किस तरफ को हो? सत्ता लोकाभिमुख हो, लोक-सत्ताभिमुख हों। यह लोकनीति है। लोगों की तरफ सत्ता का मुँह हो। लोगों की तरफ से मतलब है, शासन की आवश्यकता कम होती चली जाय, लोगों में अनुशासन बढ़ता चला जाय। प्रशासन कम हो, अनुशासन बढ़ता चला जाय। अनुशासन में कितनी चीजें आती हैं? **Self-discipline, Initiative, Incentive, Self-confidence.** आत्मानुशासन, स्वयंकर्तृत्व, स्वयंप्रेरणा, आत्म-विश्वास—इतनी चीजें राज्य-व्यवस्था से लोगों में नहीं बढ़ती हैं,

तो वह राज्य-व्यवस्था लोगों को पंगु और पुरुषार्थहीन बना देती है। लोगों में स्वयंप्रेरणा, Incentive होना चाहिए। स्वयंकर्तृत्व, Initiative आना चाहिए। आत्मविश्वास, Self-confidence आना चाहिए। और उनमें पुरुषार्थ बढ़ना चाहिए जिसे आप Social Prowess कहते हैं।—ये सारी चीजें लोगों में आनी चाहिए। इन गुणों का विकास होना चाहिए। सत्ता का प्रयोग इन गुणों के विकास के लिए यदि होता है, तो सत्ता का सदुपयोग है। इन गुणों के ह्रास में अगर सत्ता का उपयोग होता है, तो वह सुराज्य भले ही हो, शासन लोगों को आराम देनेवाला भले न हो, लेकिन लोगों को पुरुषार्थहीन बनानेवाला वह शासन होता है। इस दृष्टि से मैंने आपके सामने यह सिद्धान्त रखा कि हमें लोकनीति की तरफ कदम बढ़ाना है। लोकनीति का मतलब यह है कि ऐसा दिन आना चाहिए जब नागरिकों के बीच में कानून और शासन की जरूरत न रह जाय।

नागरिकों के बीच में कानून न हो

कोई मनुष्य यह नहीं चाहता कि उसके और उसकी माँ के बीच में कानून आये। कोई मनुष्य यह नहीं चाहता कि कचहरी में एक तरफ उसके पिताजी हों और दूसरी तरफ वह खड़ा हो। कोई भला आदमी यह नहीं चाहता कि एक तरफ उसका भाई हो और दूसरी तरफ वह हो, और दोनों की अदालतबाजी चले। दोनों अगर कचहरी में चले जायँ, तो लोग कहते हैं कि हमने सोचा था कि तुम लोग अच्छे खानदान के लड़के हो, कुलीन मनुष्य के बेटे हो, पर तुम दूसरे ही ढंग के निकले। बाप कुलीन था, बहुत शरीफ आदमी था, लेकिन लड़के वैसे नहीं निकले, कचहरी में आये दिन चले जाते हैं। बगैर कानून के इनका काम नहीं चलता।

टेनिसी व्हेलीवाले आर्थर मार्गन ने एक छोटी-सी किताब

लिखी है—'The Community of the Future and the Future of the Community.' उसका एक वाक्य मेरे मन में खप गया है—Drive out the legal tender from loafing about our homes. कानून के पुर्जे को हमारे मकानों के आसपास चक्कर मत काटने दीजिये। कानून का पुर्जा अगर हमारे घरों के आसपास मँडरायेगा, तो वह हमारे घर को नष्ट कर देगा, कुटुम्ब को नष्ट कर देगा। कौटुम्बिकता को अगर आप सँभालना चाहते हैं, उसका संरक्षण करना चाहते हैं, तो उसके लिए जरूरत यह है कि मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्ध में, व्यवहार में कानून कम-से-कम आये। इसे मैंने शासन-मुक्ति कहा। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप सोचिये कि क्या इसमें किसी का मतभेद है या मतभेद हो सकता है ?

सत्ता को बाँटना है

दूसरी चीज, हमको सत्ता को भी बाँट देना है। "सम्पत्ति का क्या करोगे ?"—लोगों ने पूछा। बँटवारा करो। सम्पत्ति को बाँटो। सवाल यह है कि सम्पत्ति को बाँटने की जरूरत क्या है ? कहा—"यही पूँजीवाद है।" पूँजीवाद में क्या होता है ? श्रम का समाजीकरण होता है, पूँजी का केन्द्रीकरण होता है। पूँजी का केन्द्रीकरण, श्रम का समाजीकरण—ये दोनों साथ-साथ नहीं चलते। इनमें से आगे चलकर विरोध पैदा होता है। उस आन्तर-विरोध में से क्रान्ति अपने-आप पैदा होती है। यह वैज्ञानिक क्रान्तिवाद है, जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहते हैं। सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न हो। सम्पत्ति को बाँटो। आज लोकनीति की माँग यही है। इतना ही है कि सम्पत्ति का भी बँटवारा हो और सत्ता का भी बँटवारा हो। सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न हो, तो सत्ता का भी केन्द्रीकरण न हो। अगर आप यह चाहते हैं कि अर्थ का केन्द्री-

करण न हो, तो उसके साथ-साथ दूसरी चीज भी आती है कि सत्ता का भी केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए। स्टेटिज्म के साथ-साथ सेंटिज्म भी जाना चाहिए। The task of this age is to decentraise in all its manifestations.

सत्ता को अभिव्यक्ति जितने-जितने क्षेत्रों में और जिन-जिन रूपों में होती है, उन सारे क्षेत्रों में और उन सारे रूपों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण आज का युग-मन्त्र है। इसको आपको आज करना है। यह विकेन्द्रीकरण क्यों करना चाहिए? सत्ता अपने में बुरी नहीं है, अपने में अच्छी भी नहीं है। ये सारे विवाद के विषय हैं। केवल नमूने के लिए एक पुराना उदाहरण देता हूँ।

औजारों के बारे में विवेक

एक मनुष्य तलवार से खीरा काटता है। दूसरे लोग यह देखते ही हँस पड़ते हैं। कहते हैं कि होगा कोई ब्राह्मण या बनिया का बेटा, जिसके खानदान में कभी किसी बूढ़े-बड़े ने तलवार नहीं देखी होगी। इसलिए चाकू से जो काम लेना चाहिए वह तलवार से ले रहा है। खीरा काटना तलवार का गलत उपयोग है। खीरा काटना चाकू का सही उपयोग है। निःशस्त्रीकरण का मतलब क्या है? जिन औजारों का सही उपयोग ही गलत है, वे औजार समाज में नहीं होने चाहिए। अस्पताल, पुलिस, फौज लोक-सम्मत संस्थाएँ हैं। लेकिन लोक-सम्मत होते हुए भी, लोगों ने उनके विषय में माना है कि इनका सही उपयोग भी गलत है, इसलिए कोई दिन ऐसा आना चाहिए कि इनका कोई उपयोग ही न रहे।

सत्तावादियों की नास्तिकता

यही बात सत्ता के विषय में सोची गयी है। सत्ता का कुछ ऐसा स्वभाव है कि प्रतिद्वन्द्वी का, प्रतिस्पर्धी को नहीं सह सकती। Power cannot share the world even between two thrones.

दुनिया में दो सिंहासन रहें, यह कोई सत्ताधारी सह नहीं सकता। इसलिए वह एक दूसरे अर्थ में नास्तिक होता है। नास्तिक दो तरह के होते हैं। एक थे ब्रेडलॉ वगैरह। ये Athiests कहलाते थे। हम लोगों में, सर्वोदयवालों में भी इस तरह के नास्तिक हैं। वे भी ईश्वर को नहीं मानते। भगवान् कपिल, जिनका नाम भगवद्गीता में लिखा गया है, "सिद्धानाम् कपिलो मुनिः" विभूतियों में गिनाया है। उनका सूत्र है, 'सांख्यसूत्र'। "ईश्वरस्य सिद्धौ प्रमाणाभावात्।" ईश्वर की सिद्धि के प्रमाण कहीं हैं ही नहीं। वह कहता है, ऐसे निरीश्वरवादी नास्तिक, अवैदिक नास्तिक पुराने जमाने में कुछ थे: लेकिन सत्तावादी नास्तिक दूसरी तरह का होता है। सत्तावादी की नास्तिकता क्या कहती है? यही कि ईश्वर मेरी सत्ता का दावेदार है। प्रतिस्पर्धी है। इसलिए उसका सिंहासन भी मैं इस दुनिया में रहने नहीं दूँगा उसे अपना सिंहासन रखना है, तो वह स्वर्ग में रखे। Let God rule in heaven and Caesar shall rule in this world. ईश्वर और सीज़र के झगड़े में सीज़र हमेशा इतनी व्यवस्था करता है कि 'भगवान् स्वर्ग में सुरक्षित रहे, इहलोक में उसके चरणों का स्पर्श न हो सके।' वह दो सिंहासनों को बर्दाश्त नहीं कर सकता। यह तो सत्ता का स्वभाव माना गया है। इसकी तरफ से सत्ता के बँटवारे की तरफ, विकेन्द्रीकरण की तरफ कदम बढ़ाना है। विकेन्द्रीकरण की तरफ हम क्यों बढ़ना चाहते हैं। इसीलिए कि सत्ता जब फैल जाती है, बिखर जाती है, तो सत्ता में जितने गुण हैं, उतने रह जाते हैं और उसका डंक निकल जाता है। सत्ता का डंक निकलने के लिए विकेन्द्रीकरण की बात कही गयी है। इस दृष्टि से, जब आप विचार करते हैं, तो सत्ता के विकेन्द्रीकरण के जितने दुष्परिणाम हैं, उन दुष्परिणामों का कम करते जाना और अन्त में उन दुष्परिणामों को पूर्ण रूप से समाप्त कर देना लोकनीति है।

जितने-जितने दुष्परिणाम सत्तावाद के होते हैं, अब मैं सैंटिज्म और स्टेटिज्म की एक शास्त्रीय शब्द में व्याख्या कर रहा हूँ। उसे मैंने 'सत्तावाद' कहा है। सत्तावाद में से कुछ दुष्परिणाम निकलते हैं, उन दुष्परिणामों से हमको समाज को बचाना है, नागरिक को बचाना है, जनता को बचाना है, 'लोक' को बचाना है।

सत्ता के दुष्परिणाम

कौन-कौन से दुष्परिणाम सत्ता से निकल सकते हैं? पहले भाषण में मैंने कहा था कि दुनिया एक होनी चाहिये। तो एक ने कहा कि दुनिया की सरकार एक होनी चाहिये। सारी दुनिया को एक करना है। सारी दुनिया की सरकारों को एक कर दो। ऐसी सरकार हो जाती है, तो दुनिया एक हो जाती है। World Government (विश्व सरकार) स्थापित कर दो, यह माँग हुई। इसका तरीका कौन-सा है? एक तो सिकन्दर का तरीका है और दूसरा ईसा का तरीका है। सारी दुनिया में अगर सिकन्दर का राज हो जाता है, तो दुनिया एक हो जाती है।

लड़का बाप से कहता हैं—"आपने रानी के बाग में जो देखा, सो हमें बतलाइये।" वह कहता है—"एक बहुत अनोखी चीज देखी।" "कौन सी?" "वहाँ पर शेर और बकरा साथ लेटे हुये थे।" "हाँ यह बात तो हमने सर्कस में ही देखी और रानी के बाग में नहीं देखी थी।" "साथ लेटे हुये आपने देखा?" कहा—"हाँ, शेर तो दिखाई दिया, परन्तु बकरा नहीं दिखाई दिया।" "तो बकरा कहाँ था?" कहा—"शेर के भीतर था।" The lamp was inside the lion!

लेकिन वे दोनों एक हो गये थे। शेर के भीतर बकरा सो रहा था। यह सिकन्दर का तरीका कहलाता है। मेरे प्रभुत्व में, मेरे भीतर मेरी सत्ता में अगर सारी दुनिया आ जाती है, तो सारी

दुनिया एक हो जाती है। दुनिया की एक सरकार होनी चाहिये। पर वह किसकी होनी चाहिये ? लोकनीति जवाब देती है; जो राष्ट्र सबसे छोटे हों और जिनके पास शस्त्रास्त्र कम-से-कम हों, उनकी होनी चाहिये। इस तरह की सरकार आज तो बनती नहीं है !

ईसा से पूछा कि "दुनिया को एक करने का तुम्हारा तरीका कौन-सा है ?" कहा—"मैं अगर शेर हुआ, तो बकरे के भीतर प्रवेश करूँगा।" "उसके पेट में तो प्रवेश कर नहीं सकते, तो फिर किस तरह से करोगे ?" "उसके जीवन को निरापद बना दूँगा। मैं दुनिया बन जाउँगा। चराचर मैं बनूँगा, विश्व के साथ मेरा तादात्म्य होगा। विश्व मेरी हथेली पर नहीं होगा।"

रामराज्य के प्रवर्तक और अधिष्ठाता, प्रभु रामचन्द्र का छोटा भाई लक्ष्मण जनक की सभा में जब खड़ा होता है, तो उसे कुछ तैश आ जाता है—"हमसे कहते हो कि शिवजी का यह धनुष नहीं उठाया जाता ? तुम कहते हो कि दुनिया में कोई वीर नहीं ?" जनक ने कह दिया—"वीर विहीन मही मैं जानी !" इस पर लक्ष्मण को बहुत क्रोध हुआ। राम से कहने लगा—"जो राउर अनुशासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥"

एक क्षत्रिय बोल रहा है, राज्यकर्ता। वह कहता है कि आपकी अगर आज्ञा हो, तो सारे ब्रह्मांड को गेंद की तरह उठा लूँ। और उठाकर क्या करूँ ? "काँचे घट जिमि डारौं फोरी।" कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ ! इतनी ताकत इन बाजुओं में है। परशुराम ने उसे कोई ऐरा-गैरा समझ लिया था ? "इहाँ कुम्हँडबतिया कोउ नाहीं" यह कोई कोंहड़े की बेल नहीं है, "जो तर्जनि देखत मुरझाहीं" अंगुली देखने में डर जायेंगे।

यह तैश है। यह सिकन्दर है। यह सीज़र है। यह नेपोलियन है। यह हेनिबल है। यह किप्लिंग है। ये सारे साम्राज्यवादी हैं,

जो कहते हैं कि दुनिया अगर हमारे भीतर समा गयी, तो एक हो गयी !

ईसा का तादात्म्यवाद

दूसरा ईसा है। दुनिया के भीतर मैं समा जाऊँगा। उसकी कमियो के लिये मैं जिम्मेवार बनूँगा। उसके अपराधों को और दोषों को भी मैं अपनाऊँगा। यह तादात्म्य है। पहले दिन मैंने आपसे कहा था कि आज ऐमे इन्सान की जरूरत है जो दुनिया की नाप का हो। सारे विश्व को व्यापने के बाद भी जिसका व्यक्तित्व कुछ बच हो गया, समाप्त नहीं हुआ। "अत्यतिष्ठद् दशांगुलम्" बित्ताभर बच ही गया। हम क्या चाहते हैं ? एक तरह 'अनार्की' से बचें, और दूसरी तरफ 'अराजकता' से बचें। Despotism is an anarchy of lawless rulers and anarchy is the despotism of lawless crowds- ये दोनों हम नहीं चाहते। भीड़ का राज कोई लोक-राज्य नहीं है। इसलिये मैंने मर्यादाओं का उल्लेख किया था। Concentration of all powers in the same body or in the same hands is despotism. एक व्यक्ति या एक संस्था में जब सारी सत्ता समाविष्ट हो जाती है, केन्द्रित हो जाती है, तो उसे 'निरंकुश सत्तावाद' कहते हैं। वह 'राज्यवाद' कहलाता है।

आज की परिस्थिति

आज क्या है ? जिस पार्टी के हाथ में शासन हो, तो लेजिस्लेटिव, एक्जिक्युटिव और जुडिशियरी—सभी उसीके हाथ में चली जाती है। सत्ता का जितना केन्द्रीकरण होगा, निरंकुशता उतनी ही बढ़ेगी। अब इससे हम बचना चाहते हैं।

दो पक्ष या हो सके तो अनेक पक्ष हों। ये सारी बातें दुनिया में क्यों आ जाती हैं ? इसलिये आती हैं कि एक ही पक्ष के हाथ में

अगर सारी सत्ता केन्द्रित हो जाती है, तो निरंकुशता बढ़ने लगती है। वह अनियन्त्रित सत्ता हो जाती है। इसलिये जरूरत इस बात की है कि सत्ता का केन्द्रीकरण न हो। ठीक है, सम्पत्ति का केन्द्रीकरण व्यक्तियों के हाथ में न हो। निजी व्यक्तियों के, गैर-सरकारियों के हाथ में न हो, तो किसके हाथ में हो। उसके हाथ में हो, जो समाज का प्रतिनिधि है।

आपने देखा होगा कि सार्वजनिक निधियों की क्या स्थिति है? सार्वजनिक निधि के ट्रस्टियों के बारे में लोग कहते हैं कि हाँ, ट्रस्टी है, आखिर पेड़ रखा है, तो आम खाता ही होगा। बगीचे का रखवाला है, तो आम खाता ही होगा। गैर-सरकारी लोगों के हाथ में केन्द्रित हो और सरकारी लोगों के हाथ में केन्द्रित हो, इसमें कुछ वैधानिक और कानूनी फर्क होगा, लेकिन कोई वास्तविक फर्क भी है क्या?

एक आदमी पर मुकदमा चला। वह रोता हुआ आया।

पूछा—"रो क्यों रहे हो?"

कहता है—"जुर्माना हुआ।"

"किस चीज का?"

"शराब पी थी।"

"ठीक ही हुआ। पी तो थी न?"

"जी हाँ।"

"फिर किस बात की शिकायत है? जुर्माना हुआ इसकी शिकायत है?"

"नहीं, मुझे हुआ इसकी शिकायत नहीं है। उस न्यायाधीश को नहीं हुआ, जिसने मुझे सजा दी।"

पूछा—"उसे क्यों सजा होनी चाहिये थी?"

कहता है—"उसने भी तो शराब पी थी, मैंने देखा।"

"तूने देखा था ?"

"जी हाँ।"

"अरे। उसके पास लाइसेन्स है।"

"लाइसेन्स है तो क्या मतलब ?"

"वह कानूनी शराब पीता है, तू गैरकानूनी शराब पीता था।"

अब कानून तो ठीक हो गया। लेकिन वास्तविकता क्या रही सो मुझे बतलाइये। सत्ता और सम्पत्ति का गैरकानूनी केन्द्रीकरण न हो और सरकारी केन्द्रीकरण हो—इसमें कौन बहुत-सा वास्तविक अन्तर रह जाता है ? सत्ता और सम्पत्ति का सरकारी केन्द्रीकरण न हो और गैर-सरकारी केन्द्रीकरण भी न हो--यह लोकनीति है। इसे हम विकेन्द्रीकरण कहते हैं। सत्ता का भी विकेन्द्रीकरण हो, सम्पत्ति का भी विकेन्द्रीकरण हो। आज के सभी राजनीतिक पक्षों से मेरी दरख्वास्त इतनी ही है कि वे सब मिलकर तक सर्वपक्षीय परिषद् करें। और उसमें सब मिलकर यह संकल्प करें कि हमारा कदम सत्ता के विकेन्द्रीकरण की तरफ बढ़े।

मैं अब आपके सामने व्यावहारिक प्रस्ताव रख रहा हूँ। पार्टियाँ होंगी या नहीं होंगी, हमें पता नहीं। पार्टियाँ अभी तो हैं ही। कल तक रहेंगी या नहीं रहेंगी ? हम चाहते हैं, न रहें। आप कहते हैं कि वे 'यावच्चंद्र दिवाकरौ' रहेंगी। हम इतना नहीं मानते। हमारे जमाने के मनुष्यों ने अपने पूर्वजों की बातों को नहीं माना, जब उसके दादा ने यह कहा कि जातियाँ नहीं रहेंगी और मनुष्य रहेगा। आज अगर मुझसे आप कहते हैं कि पक्ष नहीं रहेंगे तो लोकशाही ही रहेगी। तो मैं वन्दन करता हूँ आपका कि आप उस जमाने के हैं, जिस जमाने के हमारे दादा थे। पूज्य हैं, प्रमाण नहीं हैं। मान लीजिये कि आज जितनी पार्टियाँ हैं, ऐसी ही पार्टियाँ रहेंगी, पक्ष रहेंगे; लेकिन क्या सब मिलकर लोकमर्यादाओं का

संरक्षण नहीं करेंगे ? जिन मर्यादाओं का संरक्षण करना है, उन मर्यादाओं में से एक मर्यादा आज आप लोगों के सामने इस वक्त मैं रख रहा हूँ।

मनुष्य और मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार में सत्ता और विधि, हुकूमत और कानून का दखल कम-से-कम हो। इतना संकल्प इस देश के सारे पक्ष मिलकर करें। लोकशाही में पक्ष किस शर्त पर रह सकते हैं ? ये पक्ष इङ्गलैण्ड से शुरू हुए। हमारा खयाल है कि दुनिया में पार्टियाँ उसी तरह को हैं, जिस तरह की इङ्गलैण्ड में हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। पार्टियाँ अमेरिका में भी हैं, वे इङ्गलैण्ड की तरह की नहीं हैं। फ्रान्स में, स्विट्जरलैण्ड में जहाँ-जहाँ पार्टियाँ हैं, वहाँ इङ्गलैण्ड की तरह की पार्टियाँ नहीं हैं। हमारे यहाँ भी जो पार्टियाँ हैं, वे इङ्गलैण्ड की तरह की नहीं हैं। लेकिन ये शुरू इङ्गलैण्ड में हुईं। वाल्टर बेछाट की एक किताब है—The English Constitution. उसने पार्टियों के स्वरूप का वर्णन किया है। वह कहता है—"पक्ष अगर बहुत पक्षवादी बन जायेंगे, तो सारी-की-सारी राजनीति पक्षनिष्ठ हो जायगी, लोकनिष्ठ नहीं रहेगी।" If Parties become partisans, Politics will become sectarian. The British constitution provides for party on the only condition on which they can thrive and that condition is that they be mild.

सम्मिलित कार्य की शर्त

सारे पक्ष मिलकर काम करें, इसके लिए एक शर्त है। वह शर्त कौन-सी है ? यही कि पक्षों को सौम्य होना चाहिए। मनुष्य भले ही उत्कट हो, पक्ष सौम्य हो। The body shall be warm but the atoms cool. शरीर में और उसके खून मे तो गरमी होगी, खून उबलता भले ही हो, लेकिन पक्ष-संस्था में वह उबाल

प्रगट न हो, नहीं तो उफान आ जायेगा, लोक-जीवन नष्ट हो जायगा।

पार्टी में जो है, वह तो इन्सान है, मनुष्य है।

आपकी पार्टी में कौन है ?

The Cream of Society, समाज की जो मलाई हैं, वे हैं हमारी पार्टी में।

और दूसरी पार्टी में ?

The off-scorings, नीचे जो बच गया तलछट, वह दूसरी पार्टीयों में हैं। इस तरह का एक पक्षाभिमान पैदा होगा।

उसका नतीजा क्या होगा ? Mental tatooing. मनुष्यों के मनों को गोदने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। फिर यह कहाँ तक पहुँचती है ! राजनीति में हिस्सा कौन ले ! जो राजनीति खेलने में कुशल हो। तुम अकुशल हो, तुम्हारा काम नहीं है। पॉलिटिक्स तुम्हारा क्षेत्र नहीं है। किसका क्षेत्र है ! Expert, विशेषज्ञों का क्षेत्र है। राजनीति, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य, संगीत, यन्त्र-विद्या—सबमें एक्सपर्ट (विशेषज्ञ) चाहिए। अब मामूली मनुष्य के लिए गुंजाइश ही नहीं है। आप मुझे बतलाइये कि क्या सब जगह इतने एक्सपर्ट, विशेषज्ञ उपलब्ध हैं ? The availability of experts has atrophied thinking in the common man. साधारण व्यक्ति को सोचने की ही जरूरत नहीं रह गयी है। इतने विशेषज्ञ आसपास हैं। जिधर देखिये उधर विशेषज्ञ ही विशेषज्ञ बैठे हैं, तो उसे सोचने की ही जरूरत नहीं रह जाती है।

नतीजा क्या है ! एक-एक एक्सपर्ट है। नाम भी उसका बड़ा मधुर रखा है। विशेषज्ञों को Inverted Paralytics कहते हैं, याने वे उलटे Paralytics हैं, उनको उलटा लकवा मारा है। उलटा लकवा से मतलब क्या है ? सीधे लकवा में एक अङ्ग निष्क्रिय हो

जाता है। और उलटा लकवा ! एक अङ्ग जरूरत से ज्यादा सक्रिय हो जाता है। किसीका पेट ही इतना बढ़ गया कि वह कलेजे को भी खा गया और दिमाग को भी खा गया। किसीका सिर ही इतना बढ़ गया कि वह हाथ-पैर को खा गया। किसीके हाथ-पैर ही इतने बढ़ गये कि वे दिल और दिमाग को ही खा गये। ऐसे Inverted Paralysis और Human Dropsy से हम नागरिक को बचाना चाहते हैं।

हमारा नागरिक कैसा होगा ?

हमारा नागरिक व्यवहार में All-rounder और Robust commonsense वाला होगा। सारी चीजों में उसका थोड़ा-थोड़ा दखल होगा। हर बात पर वह विशेषज्ञ पर निर्भर नहीं रहेगा। इस तरह का सन्तुलित मानव हमारा नागरिक होगा। तभी लोक-सत्ता आ सकती है। ऐसा सन्तुलित मानव अगर नहीं होगा, तो लोकसत्ता नहीं आ सकेगी। लोकसत्ता के लिये सन्तुलित मानव की आवश्यकता है। प्रश्न है कि तब विशेषज्ञ नहीं रहेंगे क्या ? अवश्य रहेंगे। लेकिन विशेषज्ञों की मर्यादा यह होगी कि उनके कारण साधारण नागरिक का सन्तुलन नष्ट नहीं होगा। यह मर्यादा है।

लोकनीति और राजनीतिक पक्ष

राजनीति जिनका पेशा है, उनके लिये लोकनीति में कोई अवसर नहीं है। राजनीति क्या पेशा है, यह मैं आपको समझाऊं। इसमें मेरा दूसरा मुद्दा आ जाता है—चुनाव। अब एक-एक ले रहा हूँ। क्या राज्य-संस्था नहीं होगी ? राज्य-संस्था होगी। पर, उसका मुँह किस तरफ को होगा ? आत्मविलीनीकरण की तरफ होगा। कदम किस तरफ को बढ़ेगा ? विकेन्द्रीकरण की तरफ बढ़ेगा। क्या पक्ष नहीं होंगे ? पक्ष होंगे। फिर ये पक्ष क्या करेंगे ? सारे-के-सारे

पक्ष मिलकर सम्मिलित पुरुषार्थ से लोक-जीवन की मर्यादाओं का संरक्षण करेंगे। सत्ता के विकेन्द्रीकरण का संकल्प सारे पक्ष मिलकर करेंगे। The right of enjoyment of Parliamentary institution depends on the responsibility of maintaining them.

आप कहेंगे कि लोकतान्त्रिक संस्थाओं से हम लाभ तो उठायेंगे, लेकिन उनके संरक्षण की जिम्मेवारो हमारी नहीं होगी। तो अन्त में क्या होगा? यही होगा कि संस्थाएँ हाथ में नहीं रहेंगी और लोक-चारित्र्य नष्ट हो जायेगा।

'ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवम् नष्टमेव च'।

एक आदमी उठता है, स्पीकर की गदा लेकर भाग जाता है। लोग रोकते हैं—"अरे भाई, रुको-रुको, स्पीकर की गदा नहीं उठानी चाहिए।" पर वह मानता ही नहीं। स्पीकर कहता है—"ठीक है, तो आज की सभा बरखास्त।" वह सभा का विसर्जन कर देता है। तीन दिन के बाद फिर आता है। फिर वह टेबुल थपथपाता है। पर कोई नहीं मानता। स्पीकर का कोई बोलने ही नहीं देता, सब लोग शोर मचाते हैं। क्या स्पीकर के बारे में आपके मन में यह निश्चय है कि स्पीकर एक ही पार्टी का होगा? दो जगह आपकी बात सिद्ध हो गयी। केरल में मुख्य मन्त्री दूसरी पार्टी का हो गया। बम्बई में मेयर दूसरी पार्टी का हो गया। अब बम्बई का मेयर टेबुल थपथपाता है और कोई मानता हो नहीं है। वह कहता है कि यह लोक-द्रोह है। क्यों? कम्युनिस्ट मेयर हो गया इसलिये। और उससे पहले लोक-सेबा थी थपथपाना, अब लोक-द्रोह हो गया।

मेयर और स्पीकर चाहे किसी पार्टी का क्यों न हो, संसदीय संस्थाओं की मर्यादाओं का पालन सारी पार्टियाँ मिलकर करेंगी। जिस पार्टी का सदस्य उसका भंग करेगा, उसका धिक्कार वह पार्टी करेगी। मैं आपके सामने लोकनीति के व्यावहारिक सुझाव

रख रहा हूँ। सर्वदल सम्मेलन, सर्वपक्षीय परिषद् का यह दूसरा प्रस्ताव होगा कि जो कोई इन मर्यादाओं का भंग करेगा, केरल में पी० एस० पी० और कांग्रेस भंग करेगी, तो पी० एस० पी० और कांग्रेस निन्दा करेगी। कहीं कम्युनिस्ट पार्टी भंग करेगी, तो कम्युनिस्ट पार्टी निन्दा करेगो। यह लोक-जीवन की एक मर्यादा है, जिसका संरक्षण होना चाहिये! इसके बाद मैं चुनाव पर पर आता हूँ।

लोकनीति और चुनाव

आज चुनाव जीतना ताश के खेल की तरह एक जादू का-सा खेल हो गया है। हम जादू के खेल देखने जाते थे। जादूवाला ऐसी सिफत से ताश खेल दिखाता था कि हम उससे पूछते कि आपके हाथ में जादू है क्या? वह कहता था—"मेरे हाथ में जादू है, सिफत है। यह हाथ की सफाई है।" इस सिफत से क्या होता है? **I can manage elections, manipulate elected bodies, manoeuvre plebicite.**

इसके जरिये मैं सार्वमत, चुनाव और लोकनिर्वाचित संस्थाएँ–सबको अपने काबू में रख सकता हूँ। ऐसी तुम्हारे पास कौन-सी विद्या है? हमारे पास प्रचार की विद्या है। Propaganda, Canvassing, Special pleading, Salesmanship, Manoeuvre—इन सबको The devices of Publicity कहते हैं। ये प्रकाशन की युक्तियाँ हैं। इनका प्रयोग मुसोलिनी ने किया, हिटलर ने किया। नतीजा यह हुआ कि Even the rancid doctrines of facism began to seem plausible. फासिस्ट सिद्धान्त जो बिलकुल सड़ने लगे थे, वे भी सुहावने लगने लगे। मनुष्य को भाने लगे। इस तरह की ये Devices हैं। Propaganda, प्रकाशन प्रसिद्धि की एक कला हो गयी है। उसका नतीजा चुनाव में आज दिखाई देता है। सर्व-

सेवा-संघ की बातों को माननेवाले कुछ मुट्ठीभर लोगों ने तय किया कि चुनाव में हिस्सा नहीं लेंगे। सर्व-सेवा-संघ ने एक प्रस्ताव किया कि चुनाव में हिस्सा नहीं लेना चाहिये। कहा यह गया कि लोक-शिक्षण का महापर्व आता है और उसमें तुम कोरे-के-कोरे रह जाते हो।

लोक-गंगा में नहाने का लोक-शिक्षण का यह महापर्व आता है। चुनाव क्या सत्ता की स्पर्धा का कुरुक्षेत्र है? चुनाव तो महापर्व है। लोक-शिक्षण का महोत्सव है। इंग्लैंड में भी अपढ़ लोग थे। वे चुनाव में हिस्सा लेते थे। साक्षरता बहुत कम थी। तो कहाँ गया यह कहना कि 'Let us educate our masters.' क्यों? झोपड़ी को वोट दो, साइकिल को वोट दो, इस तरह से कहना पड़ता है न। चित्र रखने पड़ते हैं, शब्द नहीं रख सकते। शब्द रखे जा सकें, चित्रों की जरूरत न रहे, इस सुविधा के लिये कहा गया है—Let us educate our masters. यह लोक-शिक्षण का महापर्व है। तो मेरा तीसरा सुझाव यह है कि सारी पार्टियाँ मिलकर एक संयुक्त परिषद् में यह प्रस्ताव करें कि चुनावों के समय परस्पर दोषाविष्करण नहीं होगा। अपने-अपने सिद्धान्तों का, कार्यक्रमों का प्रतिपादन होगा, व्यक्तिगत आलोचना नहीं होगी। परस्पर दोषाविष्करण नहीं होगा। लोगों को वोट का महत्त्व समझाया जायेगा। स्त्री के सतीत्व पुरुष के ईमान और राष्ट्र की स्वतन्त्रता की जो कीमत है, वह नागरिक के वोट की है। वह खैरात की चीज नहीं, वह जबरदस्ती से देने की चीज नहीं, वह बेचने की चीज नहीं। सारी पार्टियाँ मिलकर वोटर को समझायें।

लोकनीति और लोक-शिक्षण

अब इसमें विनोबा ने इतनी बात जोड़ी कि सारी पार्टियाँ मिलकर तो समझायें ही लेकिन कुछ समझानेवाले ऐसे हों, जो वोट

न माँगते हों। आप जाकर कहें कि मतदाताओ, स्त्री के चारित्र्य, पुरुष की प्रामाणिकता, उसके ईमान, उसके स्वाभिमान और राष्ट्र की स्वतन्त्रता की जो कीमत है, वह आपके वोट की है। आपने बहुत जोशीला भाषण किया। तालियाँ बजीं। बाद में आपने Italics में कहा —"इसलिये मुझे वोट दो।" इतना कहते ही सारे भाषण पर पानी फिर जाता है। लोग कहते हैं—"अरे यह लोक-चारित्र्य का धर्म-शिक्षण हमें दे रहा था, यह इसलिये दे रहा था कि अन्त में इसलिये मुझे वोट दो' ऐसा कहना चाहता था।" मैंने आपसे कहा कि यह सत्ता का निषेध नहीं, बहिष्कार नहीं। लोक-मर्यादा में इतनी बात की और जरूरत है कि लोक-शिक्षण करने वाले जो हों, वे सत्ताकांक्षी न हों। इसकी जरूरत क्यों है? प्रसंग आते हैं और वे हरएक के जीवन में आते हैं। मेरे जीवन में भी आते हैं। एक बार एक मजे का प्रसंग आया था।

एक जगह हमें कलाकन्द पहुँचाना था, तो मैंने कहा—"इस लड़के के साथ दे दो।" दूसरे सज्जन ने कहा—"इस लड़के के साथ दोगे, तो वहाँ तक पहुँचेगा नहीं। इसको भूख है, इसकी जीभ में स्वाद है, कलाकन्द स्वादिष्ट है, डिब्बा भी खुला है। अब कौन-सी चीज बाकी रह गयी?" दूसरे ने सुझाव दिया कि "फलाने बुजुर्ग जा रहे हैं, उनके साथ दे दो।" "ये बुजुर्ग हैं तो क्या हुआ, इसके लिये तो दाँतों की जरूरत नहीं है।" कहा—"नहीं, वे सिर्फ गाय का ही घी-दूध खाते हैं और मिल की शक्कर नहीं खाते।" "हाँ अब सुरक्षित है। इनके हाथ में कलाकन्द सुरक्षित है।"

सम्पत्ति किसको सौंपो? जिनके मन में सम्पत्ति का लोभ न रहे। सत्ता किसको सौंपो? जिसे सत्ता की आकांक्षा नहीं है। तो फिर सत्ता की आकांक्षा नहीं है, यही एक नारा बन जायेगा। यह नारेबाजी बड़ी टेढ़ी चीज है। माँ ने बच्चों से कहा कि लड्डू

उसीको मिलेगा जो नहीं माँगेगा। सब लड़कों ने हाथ बढ़ाया, 'हम नहीं माँगते', 'हम नहीं माँगते'। इसकी कोई पहचान नहीं है। इसलिये लोकनीति में आज की मर्यादा इतनी ही रखी गयी है कि लोकनीति को माननेवाला कम-से-कम आज कुछ अवधि तक सत्ता की स्पर्धा से दूर रहे, सम्पत्ति की स्पर्धा से भी बचकर रहे और सत्ता की स्पर्धा से भी बचकर रहे। यह कोई बहुत बड़ी माँग नहीं है। चुनावों में जो पार्टी Malpractices और Corrupt practices चलायेगी याने चुनाव की मर्यादा और नीति का उल्लंघन करेगी, उसी पार्टी के लोग उसकी निन्दा करेंगे, दूसरी पार्टी के नहीं।

सर्वपक्षीय सम्मेलन के लिये मैं एक के बाद एक सुझाव रख रहा हूँ। लोग कहते हैं, तुम्हारे पास कोई Immediate Programme नहीं है! तात्कालिक कार्यक्रम नहीं है? है, आज है और ऐसा है, जिसके बारे में आपकी कोई दो रायें नहीं हो सकतीं। ज्यादा-से-ज्यादा आप इतना ही कहेंगे कि यह हो नहीं सकता। तो 'हो नहीं सकता' का कोई जवाब नहीं है। दुनिया में सारे आदमी जीवित नहीं रह सकते। हमने मान लिया। सब मरनेवाले हैं मान लिया, फिर भी देखता हूँ कि बम्बई शहर में जितने आदमी हैं, उतने श्मशान कभी नहीं होते। यह मैंने हमेशा देखा है। और यह है 'मृत्युलोक'। मृत्युलोक में तो श्मशान की लोक-संख्या ज्यादा होनी चाहिए और बस्ती की कम होनी चाहिए। इसलिए आप कृपापूर्वक यह न कहिये कि यह नहीं होने वाला है। इतना छोड़कर सब कुछ कहिये। यह व्यवहार्य है और करना चाहें, तो आज ही हो सकता है।

लोकनीति और लोक-आन्दोलन

इससे आगे की बात आन्दोलन। लोक-आन्दोलन। जिसे आप Popular Agitation कहते है। इसमें आपने दो बातें देखीं। एक

तरफ से पत्थर और ढेले चलते हैं, दूसरी तरफ से गोली चलती है। गोलीवाला कहता है—"ढेले नहीं चलेंगे तो गोली नहीं चलेगी।" ढेलेवाला क्या कहता है ? वह कहता है कि "भड़काओगे नहीं, तो ढेला नहीं चलेगा।"

एक आदमी ने कहा—"हमको कभी गुस्सा नहीं आता।" "कब तक नहीं आता ?" "जब तक कोई गुस्सा नहीं दिलाता।" ऐसी तो सारी दुनिया है। नाहक किसीको गुस्सा नहीं आता है। लोक-आन्दोलन की जो मर्यादा आपने स्वीकार की है, वह यह है कि (Even under the gravest provocation) जहाँ अधिक-से-अधिक उत्तेजना के कारण होंगे, वहाँ भी हमारी तरफ से हिंसा नहीं होगी। सारे पक्ष मिलकर ऐसा संकल्प करें। और अगर हिंसा हुई तो ? तो एक पक्ष प्रतिपक्षी को दोष न दे। हिंसा के लिए वह अपने-आपको दोष दे। हम शराब नहीं पीते बशर्ते कि हमारी बगल में दुकान न हो। बात सही है। हम शराब नहीं पीते। कैसे जाना ? टेबुल पर रखी हुई है, मित्र आग्रह कर रहा है, हम नहीं पीते। दूसरे के इसरार को भी नहीं मानते हैं, आग्रह को भी नहीं स्वीकार करते। जहाँ पर कारण है, वहाँ पर भी जब हिंसा नहीं होती, तो वह शान्तिमय आन्दोलन कहलाता है। और हिंसा होती है तो ? जिम्मेवारी किसकी है ? आन्दोलन जिसने शुरू किया, उसकी।

'I shoulder the full responsibility for the diabolical crimes of Chaurichaura and Maligaon.' गांधी की यह आवाज गूँजती रहेगी। प्रिंस ऑफ वेल्स जब बम्बई में आया और यहाँ के हिन्दू-मुसलमानों ने एक होकर पारसियों पर हमला किया, तो गांधी जी ने कहा—"The swaraj that I saw in Bombay during last two days has begun to stink in my nostrils ! यह जिम्मेवार नेता कहलाता है, जो यह कहता था कि आन्दोलन मैंने

किया है। I know that I was playing with fire and if I am set free I shall play with fire again. But if there is a blaze I shall be the first man to be consumed.

'जलूँगा तो पहले मैं जलूँगा।' यह जिम्मेवार नेता था। उसने यह नहीं कहा कि तुमने भड़काया, इसलिए लोगों ने पत्थर मारे। उसने यह कहा कि तुम चाहे जितना भड़काओ, तुम हमारी सत्त्व-परीक्षा करते हो, मैं निःशस्त्र लोगों का अहिंसक बनाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरे देश की जनता निःशस्त्र हैं, बहादुर नहीं है। मैं निःशस्त्रों को अहिंसा की दीक्षा दे रहा हूँ। अहिंसक वीरता की दीक्षा दे रहा हूँ। परीक्षा मेरी है, तुम्हारी नहीं।

लोकनीति और अधिकृत हिंसा

गोली चलानेवाला लाइसेन्सशुदा हिंसा करता है। लाइसेन्सशुदा क्यों? पुलिस और सेना का खर्च आपने बजट में मंजूर किया है। आप अगर स्वयंसेवक बनकर जाते हैं, तो आपकी हिंसा अनधिकृत है। Unauthorised Unlicensed है। बिना लाइसेंस की है। लेकिन सिपाही पुलिस का है। पुलिस किस लिए रखी है? अमन और कानून को कायम रखने के लिए। इसलिए मैंने शुरू में आपसे कहा कि यह एक सामान्य सिद्धान्त है, जिसे आप सबको मानना होगा। वह सिद्धान्त यह है कि यह लाइसेंसशुदा हिंसा है, इसलिए इसका कम-से-कम उपयोग किया जाय। आपको अगर हिंसा का अधिकार है, तो अधिकृत हिंसा कम-से-कम होनी चाहिए। जब कहा जाता है कि तुमने गोली नाहक चलायी, तो उधर से दलील दी जाती है कि जितनी जरूरत थी, उससे कम चलायी। कभी पुलिस ने ऐसा कहा है कि जरूरत थी, उससे अधिक गोली चलायी? यह कोई नहीं कहता। इस दलील का मतलब यह है कि जितनी हिंसा का आपने

हमें अधिकार दिया है, उतनी हिंसा भी हमें नहीं करनी चाहिए। यह हमारी जिम्मेवारी है।

इसलिए जब-जब गोली चले तब-तब उस गोली के साथ अनिवार्य रूप से और अपने-आप उसकी न्यायालयीन जाँच होनी चाहिए और उस गोली का निषेध वह पक्ष सबसे पहले करे, जिस पक्ष की सत्ता हो। पहले जब यह कहा जाता था तो कांग्रेसवाले समझते थे कि सर्वोदयवाले हम लोगों के कुछ विरोधी मालूम होते हैं। उन्होंने शायद यह समझा था कि जब तक यह देश रहेगा, तब तक हमारा ही राज रहनेवाला है। पर एक धूमकेतु पैदा हुआ शंकरन् नम्बूद्रीपाद। उसके यहाँ भी गोली चली। अब इधर के सब लोग कहने लगे कि 'जाँच होनी चाहिए, जाँच होनी चाहिए।' पर गोली वहाँ चली, तो लखनऊ में भी चली, अहमदाबाद में भी चली। वहाँ जाँच, तो यहाँ भी जाँच! पहले सब कहते थे कि जाँच होनी चाहिए। केरल में जाँच होनी चाहिए?—"हाँ होनी चाहिए!" बड़े टाइप में, ब्रॅकेट में "किन्तु"। एक निकल पड़ा मर्द—राममनोहर लोहिया। पी० एस० पी० का मेम्बर था। गोली चली। उसने कहा—"इसका धिक्कार होना चाहिए, निषेध होना चाहिए।" इसके लिए कोई गांधीवाला नहीं निकला, कोई विनोबावाला नहीं निकला, कोई सर्वोदयवाला नहीं निकला। उन्होंने शास्त्रार्थ करना शुरू किया कि एक हिंसा क्षम्य होती है, एक अक्षम्य। एक विहित हिंसा होती है, एक अविहित। विहित हिंसा भी मर्यादित होनी चाहिए। अनिवार्य रूप से जब वह रहती है, तो उसकी जाँच होना चाहिए। निष्पक्ष, न्यायालयीन जाँच होनी चाहिए। सारी पार्टियाँ मिलकर यह संकल्प करें और यह कोशिश करें कि ढेलेबाजी और गोलीबाजी के मौके कम-से-कम आने चाहिएँ। ये मौके आज जितने आते हैं, उतने आगे आनेवाले जमाने में हर्गिज नहीं आने चाहिएँ।

संसदीय और वैधानिक संस्थाएं

इसके आगे का महत्त्व का सवाल यह रह जाता है कि जिन संसदीय और वैधानिक संस्थाओं का हम उपयोग करेंगे, उन वैधानिक और संसदीय संस्थाओं में क्या कोई सर्वपक्षीय नीति हो सकती है ? उनमें क्या कोई सार्वजनिक मर्यादा हो सकती है ? उस मर्यादा का विकास करने की क्या कोई प्रणाली, क्या कोई क्रम हो सकता है ? विकेन्द्रीकरण की दिशा में चलते हुए, कहीं विकेन्द्रीकरण का परिणाम संकीर्ण स्थानिक सत्तावाद में, Localism में न हो, क्या इसके लिए भी कोई विचार हमने किया है ? नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि सारी दुनिया का विचार करें और टुकड़ेखोरी में पड़ जाँय। छोटे-छोटे दिल और छोटे-छोटे दिमाग लेकर बैठ जायँ। स्थानीय संकोर्ण सत्तावाद कहीं इस देश में पैदा न हो।

उपसहार

पहले दिन आप लोगों के सामने मैंने सत्ता की नीति से (का) मतलब, राज्यवाद और लोकनीति से मतलब, जिम्मेवारी की लोकशाही, जिम्मेवारी की लोकशाही से सार्वजनिक नीतिमत्ता, नागरिक चारित्र्य और लोक-चारित्र्य के विकास की व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है, इसका थोड़ा-सा ऐतिहासिक समालोचन करके उपक्रम किया। दूसरे दिन सार्वजनिक लोक-जीवन के कुछ सिद्धान्तों को मैंने पहले आपके सामने रखा। अमेरिका और फ्रांस की राजनीति में राजनोतिक स्वतन्त्रता की बात कही। उसके बाद आर्थिक समानता की बात, १९१७ की अक्तूबर की क्रांति आयी ! इन दोनों क्रान्तियों का संगम आज की क्रान्ति में होना चाहिए। आज के सन्दर्भ में क्रान्ति शस्त्र और हिंसा से नहीं हो सकती, शान्तिमय उपायों से ही हो सकती है। यहाँ तक मैंने कल आपको पहुँचाया था। अब आज के सन्दर्भ में, आज की जैसी परिस्थिति मे जिस

प्रकार से पक्ष बने हुए हैं, क्या इसमें से भी हम लोकनीति की तरफ कुछ प्रत्यक्ष व्यावहारिक कदम रख सकते हैं? उनका थोड़ा-सा दिग्दर्शन मैंने आज के इस भाषण में किया है। जो सुझाव मैंने रखे हैं, इन्हें उपलक्षणात्मक मान लें। आप लोगों से ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है। अक्लमन्द को इशारा काफी होता है।

३–९–'५८

●

लोकनीति की ओर

जनतन्त्र का भविष्य राजनीतिक और कूटनीतिक लोगों पर सौंप कर नहीं रहा जा सकता। जो राजनीतिक क्षेत्रों से आज बाहर हैं, या जिन्हें राजनीति में से बाहर निकल पड़ने की दृष्टि और हिम्मत प्राप्त है, ऐसे लोगो पर ही जनतन्त्र के भविष्य की जिम्मेवारी है। अर्थात् राजनीति से बाहर काम करने वाले लोगों का मार्ग दुर्गम और कठिन चढ़ाई का अवश्य है, किन्तु व्यक्ति-स्वातन्त्र्य से प्रेरित ऐसे पथिकों की निष्ठा, लगन और हिम्मत पर ही जनतन्त्र का भविष्य अवलम्बित है—यह भी स्पष्ट है।

—मानवेन्द्रनाथ रॉय

[भूदान यज्ञ—१ मार्च '५७ से साभार उद्धृत]

'राजनीति' से 'लोकनीति' की ओर

(दादा धर्माधिकारी)

आज की बेढङ्गी चुनाव-प्रधान पद्धति से लोकतन्त्र को बचाने के लिए मेरा यह सुझाव है कि हर पार्टी उम्मीदवारों से दरखास्तें मँगाना बिलकुल बन्द कर दें और अपनी तरफ से पार्टी ही कहे कि हम फलाँ-फलाँ व्यक्तियों को योग्य मानते हैं और इन से दरखास्त की जरूरत हमको नहीं है। लेकिन ऐसा यदि किया जाय तो हो-हल्ला मच जायगा, क्योंकि पार्टी का जो rank and file है, जो सदस्य और नीचे के अधिकारी हैं, उनका पार्टी के हाई कमाण्ड में भरोसा नहीं है। अगर एक ही बात होती, तो समझ में आ सकती थी, लेकिन यहाँ तो सभी जगह भरोसा ही नहीं है। और ये सब अविश्वास पर लोकशाही की स्थापना करना चाहते हैं। इससे तो बालू पर का मकान ज्यादा अच्छा है। वोटर में अविश्वास, कँडिडेट में अविश्वास, पार्टी में अविश्वास, हाईकमाण्ड में अविश्वास, भगवान् में अविश्वास ! इसका नतीजा क्या होगा ? जिनमें विश्वास रखने की हिम्मत और दम नहीं है, ऐसे लोग लोकशाही की स्थापना नहीं कर सकते। हमको यह मान लेना चाहिए कि गलतियाँ होंगी, लेकिन अन्याय नहीं होगा। इतना विश्वास जिनका एक-दूसरे पर न हो, मेरे मित्रो, उनका पक्ष कभी नहीं बन सकता। चोरों के गिरोह में भी चोरों का एक-दूसरे पर विश्वास हो, तब चोरों का गिरोह बनता है। लेकिन जहाँ कुछ करना ही नहीं है, वहाँ विश्वास की भी जरूरत नहीं होती है। चोरों को चोरी करनी होती है, इसलिए ईमान की जरूरत होती है। यहाँ कुछ करना ही नहीं

है हमें पार्टी में, तो ईमान की जरूरत नहीं। उनका विश्वास ही नहीं होता एक-दूसरे पर।

मैं विश्वास का आरम्भ बतला रहा हूँ। सब कुछ हाई कमाण्ड पर छोड़ दिया जाय। तय किया जाय कि आप लोग जिसको कहेंगे, तभी वह खड़ा होगा और इसके लिए दूसरा कोई उम्मीदवार नहीं होगा, कोई अपील करने नहीं आयेगा, कोई यह नहीं कहेगा कि इसको क्यों खड़ा किया और मुझको क्यों नहीं खड़ा किया।

इसके बाद का और आखिरी कदम है, स्थानिक स्वराज्य में दलीय स्तर (party basis) पर चुनाव न हों।

जातिभेद दिल से हटाने होंगे

अब जाँत-पात के भेद न होने चाहिएँ, यह तो सबने मान ही लिया है; इसलिए मैं इसके विषय में विशेष नहीं कहता। सब दलों ने यह मान लिया है कि जाति देखकर उम्मीदवार खड़ा नहीं करेंगे। कागज पर यह लिख दिया है, लेकिन वे ही चुपचाप खड़ा करते हैं, जाति देखकर! तो अब इसका कोई उपाय मेरे पास नहीं है। इसका कोई उपाय मैं नहीं बतला सकता, जब तक उनके मन का भी निश्चय न हो कि जाँत-पात नहीं देखनी चाहिए और यह सब मैं बहुत नम्रतापूर्वक; लेकिन उत्कटतापूर्वक आपलोगों के सामने इसलिए रख रहा हूँ कि अस्पृश्यता का प्रश्न आगे जोर पकड़नेवाला है।

जितने प्रान्तों में अभी मैं गया, उन सब प्रान्तों में मैंने देखा कि अस्पृश्य इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि कानून में अस्पृश्यता का निवारण हो जाने से ही जीवन में उसका सचमुच निवारण नहीं होता है। उन लोगों में से, अभी बड़ौदे के एक छोटे-से मित्र ने मुझसे सवाल किया था कि तुम हरिजन-सेवा को क्या क्रान्तिकारी नहीं मानते हो? मैं मानता हूँ, लेकिन अस्पृश्य नहीं मानते हैं। वह

इस नतीजे वर पहुँच गये हैं कि जब तक अस्पृश्यों के हाथ में सत्ता नहीं होगी, तक तक ये सवर्ण नहीं मानने वाले हैं।

पहले डा० आम्बेडकर ने नासिक के राम-मन्दिर में प्रवेश करने के लिए मन्दिर-प्रवेश का सत्याग्रह किया और जब गाँधी ने कहा कि मन्दिर-प्रवेश होना चाहिए, तो उसने गांधी को लिखा कि "गांधी, तुम भूल कर रहे हो। मन्दिर-प्रवेश से अब अस्पृश्यता-निवारण नहीं होने वाला है। हमको आर्थिक और राजनैतिक अधिकार मिलने चाहिएँ। मुसलमानों का राज हुआ, मुसलमान स्पृश्य हो गये। ईसाइयों का राज हो गया, तो ईसाई स्पृश्य हो गये। हमारा भी राज होगा, तो हम स्पृश्य हो जायेंगे।" इस तरह की बात वे करने लगे। आम्बेडकर ने एक बहुत बड़ा काम किया। राज्य-सम्विधान बनाने का काम उनको सौंपा गया और वे पहले राष्ट्रपति बन जाते, तो और एक बड़ा काम हो जाता, ऐसा मेरा अपना विचार है। लेकिन इसको अब आप छोड़ दें, थोड़ी देर के लिए। यह समस्या गम्भीर होनेवाली है, इतना आप समझ लें और इसका निराकरण कागज पर नहीं हो सकता। इसलिए इसमें बहुत ईमान की आवश्यकता है।

सुझावों की दृष्टि

मैंने ये जो सुझाव आपके सामने रखे हैं, वे इस दृष्टि से रखे हैं कि इस देश की लोकशाही का संरक्षण हो। आप विनोबा और गान्धी को स्वप्नवादी, युटोपियन कह सकते हैं। विनोबा-गान्धी, दोनों को अव्यावहारिक कह सकते हैं। गान्धी ने कहा कि यह तो लोकानुरंजन होता है और जितनी लोकसत्ता है, उस लोकसत्ता को ले जा कर बाजार में बिठा दिया है। इधर विनोबा ने कहा कि निष्पक्ष लोकशाही की स्थापना से शासनमुक्ति की तरफ हमें कदम बढ़ाना है। हमने दोनों के बारे में कहा कि ये लोग ऐसी बातें कहते

हैं, जो कि हमारी समझ में ही नहीं आतीं। उनकी अन्तिम बात आपके समझ में आये न आये, इतनी बात तो आप जानते हैं न कि पाश्चात्य विचारकों ने (आप जिन्हें पाश्चात्य कहते हैं, उनकी मैं बात कर रहा हूँ। मैं तो विचारकों में पूरब-पश्चिम का भेद मानता ही नहीं हूँ) कहा है कि यह जो अराज्यवाद है, जिसे anarchism कहते हैं, यह अराज्यवाद अलग चीज है एवं अराजकता अलग चीज है और विनोबा ने जिसे शासनमुक्ति कहा है, वह असल में नागरिकों का स्वयंशासन है। प्रशासन से अनुशासन की ओर कदम बढ़ाना है और दण्डसत्ता से सम्मतिसत्ता, लोकसम्मति की तरफ हमें कदम बढ़ाना है। यह लोकशाही का विकास है। लोकशाही का आधार लोक-सम्मति है। तो लोगों की सक्रिय भूमिका का विकास होना चाहिये। आज उम्मीदवार की सक्रिय भूमिका है, आज पक्ष की सक्रिय भूमिका है। लोगों की सक्रिय भूमिका आज की लोकशाही में नहीं है। मैं नम्रतापूर्वक पूछना चाहता हूँ कि कौनसा पक्ष ऐसा है, जो यह कहेगा कि लोगों की सक्रिय भूमिका की ओर प्रगति नहीं होनी चाहिये? और अगर कोई पक्ष इसको नहीं कहता है, तो मैं कहता हूँ कि जितनी बुराइयाँ लोकशाही में आयी हैं, वे जब हम दिखाते हैं, तो वह हर पक्ष में होती हैं, किसी एक ही पक्ष में नहीं रहती हैं। तो यह कोई क्यों कहे कि यह हमारी ही ओर उँगली बता रहा है। हम किसी की तरफ उँगली नहीं दिखा रहे हैं। वह अपनी टोपी उठाकर पहन लेता है और फिर कहता है कि बस मेरे ही सिर में वह ठीक बैठती है! इस तरह हर पक्ष अगर यह साचने लगा, तो यह काम नहीं होने पाला है। देश में जमी हुई इस लोकसत्ता की बुनियादों को बदलना किसी एक पक्ष का काम नहीं है। यह देश के सारे पक्षों का काम है।

तो, पहली बात मैंने यह सुझायी कि हमारा जो उम्मीदवार हो, उसका व्यक्तित्व और उसकी निष्ठा पक्षनिष्ठा से व्यापक हो। यह एक बात मैंने बतलायी।

वशिष्ठ-सत्ता

दूसरी बात यह कि कोई उम्मीदवार दरख्वास्त नहीं करेगा। तो अब इन उम्मीदवारों को कौन चुनेगा ?—यह सवाल आता है। मैंने इसमें एक सुझाव दिया था और बहुत पहले दिया था कि उम्मीदवारों को जो लोग चुनें, वे स्वयं उम्मीदवार न हों। याने, इसका मतलब यह नहीं कि उनको लोग भेजेंगे नहीं। यह हो सकता है कि कल सत्ता उन्हीं के हाथ में आ जाय। लेकिन वे स्वयं कभी उम्मीदवार नहीं होंगे। इसका नाम संकेत से मैंने रामराज्य की परिभाषा में, वशिष्ठ-सत्ता, ऐसा रख दिया था। रामायण में तुलसीदासजी ने रामराज्य का एक लक्षण रखा है कि 'दण्ड यतिन कर।' दण्ड किनके हाथ में होगा ? यतियों के हाथ में होगा। आज भी आप चाहते हैं न कि judiciary above politics हो ? न्यायाधीश को आप सरकार के ऊपर रखते हैं। न्याय पर सरकार की सत्ता नहीं चलनी चाहिये, ऐसा आप कहते हैं न ? न्यायाधीश सत्तातीत होना चाहिये। न्याय वशिष्ठ के हाथ में हो।

सत्ता-सम्पत्ति से ऊपर उठना

दण्डी और यति वह है, जिसको न राज्य-सत्ता चाहिये, न सम्पत्ति चाहिए। सम्पत्ति और सत्ता से निरपेक्ष व्यक्ति का ही मतलब यति है। यहाँ Rishicracy (ऋषिशाही) अथवा Santo-cracy (सन्तशाही) जैसी बात नहीं है। हम लोकसत्ता की बुनियादों को पुख्ता बना देना चाहते हैं, नैतिक अधिष्ठान उसे देना चाहते हैं। इसका मतलब यह बिलकुल ही नहीं है कि जिसके हाथ

में राजसत्ता है, वह अनैतिक है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि राजसत्ता और कानून का अधिष्ठान लोक-सम्मति होगा और लोक-सम्मति के आधार पर जिनको चुनना है, उन लोगों के निर्वाचन के लिए और उनके नामों को सुझाने के लिए दुनिया में कुछ ऐसे आदमी चाहियें, जो सत्ता-निरतेक्ष होंगे, जो सम्पत्ति-निरपेक्ष होंगे। सत्ता और सम्पत्ति से निरपेक्ष लोगों का कोई पक्ष नहीं है। लोग कहते हैं कि इनका भी एक पक्ष हो गया, जैसे संन्यासियों का हो जाता था; फिर जैसे शंकराचार्य की गद्दी बन गयी और गद्दी पर बैठने वाला कोई नहीं मिला, तो जो पानी लाता था, उसी को बैठा दिया! वैसे इस तरह की बात आपको सोचने की जरूरत नहीं है। यह कोई परम्परा नहीं है। इसमें परम्परा रहेगी तो यह अव्यक्त परम्परा ही रहेगी। ऐसे लोग जगह-जगह स्वयं ही निर्माण होंगे। आज ये रविशंकर महाराज हैं, तो कल उनकी जगह थोड़े ही कोई ले सकता है? गद्दी भी बन जाय, तब भी नहीं ले सकता। इनकी जगह कोई दूसरा और ऐसा नहीं हो सकता। इनसे सलाह पूछने जायँ, तो वह औपचारिक नहीं होगा कि इनसे पूछे बगैर कुछ काम नहीं होगा। इस तरह अगर आप कानून वना लेंगे, तो वह किसी काम की चीज नहीं। वशिष्ठ-सत्ता हमेशा, आप जिसे अनौपचारिक सत्ता कहते हैं, वैसी होगी। समाज में उसका अस्तित्व होता है और लोग उसके अस्तित्व को अपने आप पहचानते हैं। गान्धी को किसने चुना था, बेचारे को? आप मुझे बतलाइये। क्या गान्धी कांग्रेस-वर्किंग कमेटी के सदस्य थे। फिर भी वर्किंग कमेटी उन्हें पूछे बिना कभी कुछ नहीं करती थी। तो क्या वर्किंग कमेटी ने उनसे यह कहा था कि तुमसे पूछे बिना हम कुछ काम नहीं करेंगे? वह तो ऐसा है, जैसे इस श्लोक में कहा है—

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

वन में कोई सिंह का राज्याभिषेक-संस्कार नहीं करता। फिर भी अपने पराक्रम द्वारा अर्जित सत्त्व से वह जंगल का राजा हो जाता है।

मतलब यह कि नेता कभी चुना हुआ नहीं होता, प्रतिनिधि चुना हुआ होता है। हाँ, यह होता है कि कभी-कभी प्रतिनिधि नेता होता है। लेकिन नेतृत्व अलग है और प्रतिनिधित्व अलग है। हम यह चाहते हैं कि नेतृत्व के नजदीक प्रतिनिधित्व को ले जायँ, ऐसी सत्ता की स्थापना करनी चाहिये। इसलिए हमने वशिष्ठ-सत्ता का विचार रखा। पक्षों के बीच और उम्मीदवारों के बीच न्याय करने का मौका आता रहता है। तो यह करने के लिये हम ऐसे लोग चाहते हैं, जो सत्ता भी नहीं चाहते और जिनके मन में सम्पत्ति का कोई मोह नहीं होगा।

गुणात्मक लोकशाही चाहिए

ये लोग चतुर्थाश्रमवाले लोग, शरीर पर भस्म रमा कर घूमने वाले वैरागी लोग होंगे, ऐसा नहीं मानना चाहिये। आपमें, मुझमें, सबमें ऐसे लोग हो सकते हैं, जिनमें यह शक्ति हैं। और यह चीज मैंने कभी विनोबा के बारे में नहीं लिखी थी। बापू के बारे में एकाध बार लिखी है। लेकिन आपलोगों को शायद याद हो, यह बात मैंने किशोरलाल भाई के बारे में लिखी थी कि इस आदमी ने वशिष्ठ-सत्ता की भूमिका को हमारे देश में चरितार्थ किया। अब तो कोई नहीं कहेगा न कि यह वैरागियों की या साधु-सन्तों की Cracy (शाही) है! वैसी कोई बात इसमें नहीं हैं। जिसे हम दण्ड-निरपेक्ष समाज' कहते हैं, उसका मतलब यह है कि दण्ड की सत्ता कम होगी। लोक-सम्पत्ति की सत्ता बढ़ेगी। लोक-सम्मति

का आधार नैतिक होता है। यह प्लेटो वाला, Philosophers (दार्शनिकों) का राज नहीं है। किसी ने प्लेटो का भी उल्लेख किया था न? वह सब कुछ यह नहीं है। यह हम साफ कर देते हैं। इसमें Philosopher राजा बनता ही नहीं है। प्रत्यक्ष सत्ता भी उसके हाथ नहीं आती। केवल सत्ता का जो अन्तिम अधिष्ठान है, जिसे आप नीति कहते हैं, वहाँ ये शासन करते हैं। वह लोक-चारित्र्य के प्रतीक होते हैं, जिसे आप Conscience of the people कहते हैं, लोकात्मा कहते हैं। उसके कुछ लोग प्रतिनिधि होते हैं। लेकिन सच पूछिये तो इस लोकात्मा के प्रतिनिधि चुने हुए नहीं होते, वे समाज में स्वयंभू होते होते हैं। उनका अनुशासन समाज में होना चाहिए। यह मैंने उसमें सुझाया था। लोक-सत्ता की बुनियादों को बदलने के जो हमारे सिलसिले हैं, उन सिलसिलों को हां बदलना है। तां, वह तो उन कानून की धाराओं में नहीं आ सकता, क्योंकि उन्हें कोई बना थांड़े ही सकता है? आपने कल कन्स्टिट्यूशन (विधान) में लिख दिया कि विनोबा भावे को कन्सल्ट करना (पूछना) चाहिए। तो यह तो बात गलत हो गयी! क्योंकि, विनोबा भावे मर गया, तो किसे कन्सल्ट करना चाहिए? तो बनाओ एक पत्थर का विनोबा! इस तरह की बात कहीं हो नहीं सकती और होनी भी नहीं चाहिए। गांधी की कन्सेन्ट या सलाह लीजिये और उनके बाद दूसरे किसी आदमी से पूछना चाहिए, ऐसी बात कन्स्टिट्यूशन में नहीं लिखी थी। ऐसा कानून कोई नहीं बना सकता। लेकिन लोगों में जिस आदमी की नैतिक शक्ति या नैतिक सत्ता बढ़ जाती है, उसके हाथ में लोकशाही का आंशिक मार्ग-दर्शन अपने आप आ जाता है, इतना ही इस वशिष्ठ-सत्ता का अर्थ है। इससे अधिक अर्थ आप इसमें मेहरबानी करके न देखें। लेकिन इसकी आवश्यकता है और

आवश्यकता इसलिए है कि लोकशाही, औपचारिक लोकशाही न बने, कागज के घोड़े न बने। लोकशाही केवल संख्यात्मक लोकशाही न बने, केवल आकारात्मक लोकशाही न बने। लोकशाही गुणात्मक लोकशाही बने। आकारात्मक (Quantitative) लोकशाही से गुणात्मक (Qualitative) लोकशाही की तरफ कदम बढ़ाने के लिए इन बातों की आवश्यकता है—आज की लोकशाही में।

अब आप अपनी नजर के सामने वाशिंगटन का भी पैटर्न (नमूना) नहीं रख सकते, वेस्टमिन्स्टिर का पैटर्न भी नहीं रख सकते। वाशिंगटन की लोकशाही में से क्रान्ति नहीं हो सकी और इङ्गलेण्ड की लोकशाही में क्रांति वहीं हो सकी। इस देश की लोकशाही, गांधी के देश की लोकशाही मैं कहूँगा, कब चरितार्थ हो सकेगी ? गांधी के देश की इसीलिए कि गांधी ने जिस जनता को सत्याग्रह का सिद्धान्त सिखाया और सत्याग्रह की कला सिखायी, उस जनता में एक प्रतिकारात्मक पुरुषार्थ तो उसने पैदा कर दिया। लेकिन प्रतिकारात्मक पुरुषार्थ के साथ-साथ जनता में विधायक भावरूप (Positive), स्वयंशासन का पुरुषार्थ जब आयेगा, तभी लोकशाही चरितार्थ हो सकेगी। यह भावरूप, विधायक स्वयंशासन का पुरुषार्थ जनना में विकसित करने के लिए भावरूप और विधायक क्रान्ति की प्रक्रिया को आवश्यकता है। इस दृष्टि से लोकशाही की पुनर्रचना का विचार आप सब लोग करें, यह आपसे मेरा नम्र निवेदन है।

[भूदानयज्ञ ७ अक्टूबर १९५५ से साभार उद्धृत]



यह डेमोक्रेसी का ढोंग

मिट्टी का रूपान्तर दूध में नहीं हो सकता, तो डेमोक्रेसी का रूपान्तर फौजी सत्ता में कैसे हो सकता है ? इसलिए सही बात यह है कि आज असलियत में डेमोक्रेसी है ही नहीं। इस समय डेमोक्रेसी हो या वेलफेयरिज्म, कम्युनिज्म हो या सोशलिज्म; सबका आधार है—फौज ! जहाँ सबका रक्षण करनेवाला एक ही देवता (फौज) है, वहाँ सारे एक ही हैं। वे चाहे आपस-आपस में लड़ें, लेकिन उनमें कोई भेद नहीं है। उनमें से कोई भी आज हिंसा पर नियंत्रण करना चाहे, तो उसमें सफल नहीं हो सकता; क्योंकि उन सबका दारोमदार फौज पर है और सारी सत्ता चन्द लोगों के हाथ में है।

कभी सत्ता एक के हाथ में रहेगी, कभी दूसरे के। जनता बेचारी अपना नसीब आजमाती रहेगी। यह जो डेमोक्रेसी का एक प्रकार का ढोंग चल रहा है, उससे मुक्ति हासिल करनी होगी और जनता की शक्ति बनानी होगी। तभी शान्ति हासिल होगी।

जम्मू, १० सितम्बर १९५९ —विनोबा